અહો! શ્રુતજ્ઞાનમ્

ગ્રંથ જીર્ણોદ્ધાર

-: સંયોજક :-

શ્રી આશાપૂરણ પાર્શ્વનાથ જૈન જ્ઞાનભંડાર

શા. વિમળાબેન સરેમલ જવેરચંદજી બેડાવાળા ભવન

હીરાજૈન સોસાયટી, સાબરમતી, અમદાવાદ-૩૮૦૦૦૫.

મો. ૯૪૨૬૫ ૮૫૯૦૪ (ઓ.) ૦૭૯-૨૨૧૩૨૫૪૩

"અહો શ્રુતજ્ઞાનમ્" ગ્રંથ જીર્ણોધ્ધાર ૧૦૦

ગાથાસહસ્ત્રી

: દ્રવ્ય સહાયક :

પૂજ્ય આગમોદ્ધારક આનંદસાગરસૂરીશ્વરજી સમુદાયના
પૂ. સાધ્વીજી શ્રી નિરંજનાશ્રીજી મ.સા.ના શિષ્યા
પૂ. સાધ્વીજી શ્રી નિત્યાનન્દશ્રીજી મ.સા.ના શિષ્યા
પૂ. સાધ્વીજી શ્રી કીર્તીપૂર્ણાશ્રીજી મ.સા.ની પ્રેરણાથી
શ્રી આશાપૂરણ ફ્લેટની આરાધક શ્રાવિકાઓના
જ્ઞાનખાતાની ઉપજમાંથી

: સંયોજક :

શાહ બાબુલાલ સરેમલ બેડાવાળા
શ્રી આશાપૂરણ પાર્શ્વનાથ જૈન જ્ઞાનભંડાર
શા. વીમળાબેન સરેમલ જવેરચંદજી બેડાવાળા ભવન
હીરાજૈન સોસાયટી, સાબરમતી, અમદાવાદ-380005
(મો.) 9426585904 (ઓ.) 22132543

સંવત ૨૦૬૭ ઈ.સ. ૨૦૧૧

"Aho Shrut Gyanam"

અહો શ્રુતજ્ઞાનમ્ ગ્રંથ જીર્ણોદ્ધાર – સંવત ૨૦૬૫ (ઈ. ૨૦૦૯)– સેટ નં-૧

ક્રમાંક	પુસ્તકનું નામ	કર્તા-ટીકાકાર-સંપાદક	પૃષ્ઠ
001	श्री नंदीसूत्र अवचूरी	पू. विक्रमसूरिजीम.सा.	238
002	श्री उत्तराध्ययन सूत्र चूर्णी	पू. जिनदासगणिचूर्णीकार	286
003	श्री अर्हद्गीता-भगवद्गीता	पू. मेघविजयजी गणिम.सा.	84
004	श्री अर्हच्चूडामणि सारसटीकः	पू. भद्रबाहुस्वामीम.सा.	18
005	श्री यूक्ति प्रकाशसूत्रं	पू. पद्मसागरजी गणिम.सा.	48
006	श्री मानतुङ्गशास्त्रम्	पू. मानतुंगविजयजीम.सा.	54
007	अपराजितपृच्छा	श्री बी. भट्टाचार्य	810
008	शिल्प स्मृति वास्तु विद्यायाम्	श्री नंदलाल चुनिलालसोमपुरा	850
009	शिल्परत्नम् भाग-१	श्रीकुमार के. सभात्सवशास्त्री	322
010	शिल्परत्नम् भाग-२	श्रीकुमार के. सभात्सवशास्त्री	280
011	प्रासादतिलक	श्री प्रभाशंकर ओघडभाई	162
012	काश्यशिल्पम्	श्री विनायक गणेश आपटे	302
013	प्रासादमञ्जरी	श्री प्रभाशंकर ओघडभाई	156
014	राजवल्लभ याने शिल्पशास्त्र	श्री नारायण भारतीगोंसाई	352
015	शिल्पदीपक	श्री गंगाधरजी प्रणीत	120
016	वास्तुसार	श्री प्रभाशंकर ओघडभाई	88
017	दीपार्णव उत्तरार्ध	श्री प्रभाशंकर ओघडभाई	110
018	જિનપ્રાસાદ માર્તણ્ડ	શ્રી નંદલાલ ચુનીલાલસોમપુરા	498
019	जैन ग्रंथावली	श्री जैन श्वेताम्बरकोन्फ्रन्स	502
020	હીરકલશ જૈનજ્યોતિષ	શ્રી હિમ્મતરામમહાશંકર જાની	454
021	न्यायप्रवेशः भाग-१	श्री आनंदशंकर बी.ध्रुव	226
022	दीपार्णव पूर्वार्ध	श्री प्रभाशंकर ओघडभाई	640
023	अनेकान्त जयपताकाख्यं भाग१	पू. मुनिचंद्रसूरिजीम.सा.	452
024	अनेकान्त जयपताकाख्यं भाग२	श्री एच. आर. कापडीआ	500
025	प्राकृत व्याकरण भाषांतर सह	श्री बेचरदास जीवराजदोशी	454
026	तत्त्पोपप्लवसिंहः	श्री जयराशी भट्ट बी. भट्टाचार्य	188
027	शक्तिवादादर्शः	श्री सुदर्शनाचार्यशास्त्री	214

028	क्षीरार्णव	श्री प्रभाशंकर ओघडभाई	414
029	वेधवास्तु प्रभाकर	श्री प्रभाशंकर ओघडभाई	192
030	शिल्परत्नाकर	श्री नर्मदाशंकरशास्त्री	824
031	प्रासाद मंडन	पं. भगवानदास जैन	288
032	श्री सिद्धहेम बृहद्वृत्ति बृहन्न्यास अध्याय१	पू. लावण्यसूरिजीम.सा.	520
033	श्री सिद्धहेम बृहद्वृत्ति बृहन्न्यास अध्याय२	पू. लावण्यसूरिजीम.सा.	578
034	श्री सिद्धहेम बृहद्वृत्ति बृहन्न्यास अध्याय३ (१)	पू. लावण्यसूरिजीम.सा.	278
035	श्री सिद्धहेम बृहद्वृत्ति बृहन्न्यास अध्याय३ (२) (३)	पू. लावण्यसूरिजीम.सा.	252
036	श्री सिद्धहेम बृहद्वृत्ति बृहन्न्यास अध्याय५	पू. लावण्यसूरिजीम.सा.	324
037	વાસ્તુનિઘંટુ	પ્રભાશંકર ઓઘડભાઈ સોમપુરા	302
038	તિલકમઞ્જરી ભાગ-૧	પૂ. લાવણ્યસૂરિજી	196
039	તિલકમઞ્જરી ભાગ-૨	પૂ. લાવણ્યસૂરિજી	190
040	તિલકમઞ્જરી ભાગ-૩	પૂ. લાવણ્યસૂરિજી	202
041	સપ્તસન્ધાન મહાકાવ્યમ્	પૂ. વિજયઅમૃતસૂરિશ્વરજી	480
042	સપ્તભઙ્ગીમિમાંસા	પૂ. પં. શિવાનન્દવિજયજી	228
043	ન્યાયાવતાર	સતિષચંદ્ર વિદ્યાભૂષણ	60
044	વ્યુત્પત્તિવાદ ગુઢાર્થતત્ત્વાલોક	શ્રી ધર્મદત્તસૂરિ (બચ્છા ઝા)	218
045	સામાન્યનિર્યુક્તિ ગુઢાર્થતત્ત્વાલોક	શ્રી ધર્મદત્તસૂરિ (બચ્છા ઝા)	190
046	સપ્તભઙ્ગીનયપ્રદીપ બાલબોધિનીવિવૃત્તિઃ	પૂ. લાવણ્યસૂરિજી	138
047	વ્યુત્પત્તિવાદ શાસ્ત્રાર્થકલા ટીકા	શ્રીવેણીમાધવ શાસ્ત્રી	296
048	નયોપદેશ ભાગ-૧ તરઙ્ગિણીતરણી	પૂ. લાવણ્યસૂરિજી	210
049	નયોપદેશ ભાગ-૨ તરઙ્ગિણીતરણી	પૂ. લાવણ્યસૂરિજી	274
050	ન્યાયસમુચ્ચય	પૂ. લાવણ્યસૂરિજી	286
051	સ્યાદ્યાર્થપ્રકાશઃ	પૂ. લાવણ્યસૂરિજી	216
052	દિન શુદ્ધિ પ્રકરણ	પૂ. દર્શનવિજયજી	532
053	બૃહદ્ ધારણા યંત્ર	પૂ. દર્શનવિજયજી	113
054	જ્યોતિર્મહોદય	સં. પૂ. અક્ષયવિજયજી	112

અહો શ્રુતજ્ઞાનમ્ ગ્રંથ જીર્ણોદ્ધાર – સંવત ૨૦૬૬ (ઈ. ૨૦૧૦)– સેટ નં-૨

ક્રમ	પુસ્તકનું નામ	ભાષા	કર્તા-ટીકાકાર-સંપાદક	પૃષ્ઠ
055	श्री सिद्धहेम बृहद्वृत्ति बृहद्न्यास अध्याय-६	सं	पू. लावण्यसूरिजीम.सा.	296
056	विविध तीर्थ कल्प	सं	पू. जिनविजयजी म.सा.	160
057	ભારતીય જૈન શ્રમણ સંસ્કૃતિ અને લેખનકળા	ગુજ.	पू. पूण्यविजयजी म.सा.	164
058	सिद्धान्तलक्षणगूढार्थ तत्त्वलोकः	सं	श्री धर्मदत्तसूरि	202
059	व्याप्ति पञ्चक विवृत्ति टीका	सं	श्री धर्मदत्तसूरि	48
060	જૈન સંગીત રાગમાળા	ગુ.	श्री मांगरोळ जैन संगीत मंडळी	306
061	चतुर्विंशतीप्रबन्ध (प्रबंध कोश)	सं	श्री रसिकलाल एच. कापडीआ	322
062	व्युत्पत्तिवाद आदर्श व्याख्यया संपूर्ण ६ अध्याय	सं	श्री सुदर्शनाचार्य	668
063	चन्द्रप्रभा हेमकौमुदी	सं	पू. मेघविजयजी गणि	516
064	विवेक विलास	सं/ગુ.	श्री दामोदर गोविंदाचार्य	268
065	पञ्चशती प्रबोध प्रबंध	सं	पू. मृगेन्द्रविजयजी म.सा.	456
066	सन्मतितत्त्वसोपानम्	सं	पू. लब्धिसूरिजी म.सा.	420
067	ઉપદેશમાલા દોઘટ્ટી ટીકા ગુર્જરાનુવાદ	ગુજ.	पू. हेमसागरसूरिजी म.सा.	638
068	मोहराजापराजयम्	सं	पू. चतुरविजयजी म.सा.	192
069	क्रियाकोश	सं/हिं	श्री मोहनलाल बांठिया	428
070	कालिकाचार्यकथासंग्रह	सं/ગુ.	श्री अंबालाल प्रेमचंद	406
071	सामान्यनिरुक्ति चंद्रकला कलाविलास टीका	सं.	श्री वामाचरण भट्टाचार्य	308
072	जन्मसमुद्रजातक	सं/हिं	श्री भगवानदास जैन	128
073	मेघमहोदय वर्षप्रबोध	सं/हिं	श्री भगवानदास जैन	532
074	જૈન સામુદ્રિકનાં પાંચ ગ્રંથો	ગુજ.	श्री हिम्मतराम महाशंकर जानी	376
075	જૈન ચિત્ર કલ્પદ્રૂમ ભાગ-૧	ગુજ.	श्री साराभाई नवाब	374

076	જૈન ચિત્ર કલ્પદ્રૂમ ભાગ-૨	ગુજ.	श्री साराभाई नवाब	238
077	સંગીત નાટ્ય રૂપાવલી	ગુજ.	श्री विद्या साराभाई नवाब	194
078	ભારતનાં જૈન તીર્થો અને તેનું શિલ્પસ્થાપત્ય	ગુજ.	श्री साराभाई नवाब	192
079	શિલ્પ ચિન્તામણિ ભાગ-૧	ગુજ.	श्री मनसुखलाल भुदरमल	254
080	બૃહદ્ શિલ્પ શાસ્ત્ર ભાગ-૧	ગુજ.	श्री जगन्नाथ अंबाराम	260
081	બૃહદ્ શિલ્પ શાસ્ત્ર ભાગ-૨	ગુજ.	श्री जगन्नाथ अंबाराम	238
082	બૃહદ્ શિલ્પ શાસ્ત્ર ભાગ-૩	ગુજ.	श्री जगन्नाथ अंबाराम	260
083	આયુર્વેદના અનુભૂત પ્રયોગો ભાગ-૧	ગુજ.	पू. कान्तिसागरजी	114
084	કલ્યાણ કારક	ગુજ.	श्री वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री	910
085	विश्वलोचन कोश	सं./हिं	श्री नंदलाल शर्मा	436
086	કથા રત્ન કોશ ભાગ-1	ગુજ.	श्री बेचरदास जीवराज दोशी	336
087	કથા રત્ન કોશ ભાગ-2	ગુજ.	श्री बेचरदास जीवराज दोशी	230
088	હસ્તસઞ્જીવનમ્	सं.	पू. मेघविजयजीगणि	322
089	ઐન્દ્રચતુર્વિંશતિકા	सं.	पू.यशोविजयजी, पू. पुण्यविजयजी	114
090	સમ્મતિ તર્ક મહાર્ણવાવતારિકા	सं.	आचार्य श्री विजयदर्शनसूरिजी	560

श्री आशापूरण पार्श्वनाथ जैन ज्ञानभंडार

संयोजक – शाह बाबुलाल सरेमल - (मो.) 9426585904 (ओ.) 22132543 - ahoshrut.bs@gmail.com
शाह वीमळाबेन सरेमल जवेरचंदजी बेडावाळा भवन
हीराजैन सोसायटी, रामनगर, साबरमती, अमदावाद-05.

अहो श्रुतज्ञानम् ग्रंथ जीर्णोद्धार – संवत २०६७ (ई. 2011) सेट नं.-३

प्रायः अप्राप्य प्राचीन पुस्तकों की स्केन डीवीडी बनाई उसकी सूची। *यह पुस्तके www.jainelibrary.org वेबसाइट से भी डाउनलोड कर सकते हैं।*

क्रम	पुस्तक नाम	कर्त्ता/टीकाकार	भाषा	संपादक / प्रकाशक	पृष्ठ
91	स्याद्वाद रत्नाकर भाग-१	वादिदेवसूरिजी	सं.	मोतीलाल लाघाजी पुना	272
92	स्याद्वाद रत्नाकर भाग-२	वादिदेवसूरिजी	सं.	मोतीलाल लाघाजी पुना	240
93	स्याद्वाद रत्नाकर भाग-३	वादिदेवसूरिजी	सं.	मोतीलाल लाघाजी पुना	254
94	स्याद्वाद रत्नाकर भाग-४	वादिदेवसूरिजी	सं.	मोतीलाल लाघाजी पुना	282
95	स्याद्वाद रत्नाकर भाग-५	वादिदेवसूरिजी	सं.	मोतीलाल लाघाजी पुना	118
96	पवित्र कल्पसूत्र	पुण्यविजयजी	सं./अं	साराभाई नवाब	466
97	समराङ्गण सूत्रधार भाग-१	भोजदेव	सं.	टी. गणपति शास्त्री	342
98	समराङ्गण सूत्रधार भाग-२	भोजदेव	सं.	टी. गणपति शास्त्री	362
99	भुवनदीपक	पद्मप्रभसूरिजी	सं.	वेंकटेश प्रेस	134
100	गाथासहस्त्री	समयसुंदरजी	सं.	सुखलालजी	70
101	भारतीय प्राचीन लिपीमाला	गौरीशंकर ओझा	हिन्दी	मुन्शीराम मनोहरराम	316
102	शब्दरत्नाकर	साधुसुन्दरजी	सं.	हरगोविन्ददास बेचरदास	224
103	सुबोधवाणी प्रकाश	न्यायविजयजी	सं./गु	हेमचंद्राचार्य जैन सभा	612
104	लघु प्रबंध संग्रह	जयंत पी. ठाकर	सं.	ओरीएन्ट इस्टी. बरोडा	307
105	जैन स्तोत्र संचय-१-२-३	माणिक्यसागरसूरिजी	सं.	आगमोद्धारक सभा	250
106	सन्मतितर्क प्रकरण भाग-१,२,३	सिद्धसेन दिवाकर	सं.	सुखलाल संघवी	514
107	सन्मतितर्क प्रकरण भाग-४,५	सिद्धसेन दिवाकर	सं.	सुखलाल संघवी	454
108	न्यायसार - न्यायतात्पर्यदीपिका	सतिषचंद्र विद्याभूषण	सं.	एसियाटीक सोसायटी	354

109	जैन लेख संग्रह भाग-१	पुरणचंद्र नाहर	सं./हि	पुरणचंद्र नाहर	337
110	जैन लेख संग्रह भाग-२	पुरणचंद्र नाहर	सं./हि	पुरणचंद्र नाहर	354
111	जैन लेख संग्रह भाग-३	पुरणचंद्र नाहर	सं./हि	पुरणचंद्र नाहर	372
112	जैन धातु प्रतिमा लेख भाग-१	कांतिसागरजी	सं./हि	जिनदत्तसूरि ज्ञानभंडार	142
113	जैन प्रतिमा लेख संग्रह	दौलतसिंह लोढा	सं./हि	अरविन्द धामणिया	336
114	राधनपुर प्रतिमा लेख संदोह	विशालविजयजी	सं./गु	यशोविजयजी ग्रंथमाळा	364
115	प्राचिन लेख संग्रह-१	विजयधर्मसूरिजी	सं./गु	यशोविजयजी ग्रंथमाळा	218
116	बीकानेर जैन लेख संग्रह	अगरचंद नाहटा	सं./हि	नाहटा ब्रधर्स	656
117	प्राचीन जैन लेख संग्रह भाग-१	जिनविजयजी	सं./हि	जैन आत्मानंद सभा	122
118	प्राचिन जैन लेख संग्रह भाग-२	जिनविजयजी	सं./हि	जैन आत्मानंद सभा	764
119	गुजरातना ऐतिहासिक लेखो-१	गिरजाशंकर शास्त्री	सं./गु	फार्बस गुजराती सभा	404
120	गुजरातना ऐतिहासिक लेखो-२	गिरजाशंकर शास्त्री	सं./गु	फार्बस गुजराती सभा	404
121	गुजरातना ऐतिहासिक लेखो-३	गिरजाशंकर शास्त्री	सं./गु	फार्बस गुजराती सभा	540
122	ऑपरेशन इन सर्च ऑफ संस्कृत मेन्यु. इन मुंबई सर्कल-१	पी. पीटरसन	अं.	रॉयल एशियाटीक जर्नल	274
123	ऑपरेशन इन सर्च ऑफ संस्कृत मेन्यु. इन मुंबई सर्कल-४	पी. पीटरसन	अं.	रॉयल एशियाटीक जर्नल	414
124	ऑपरेशन इन सर्च ऑफ संस्कृत मेन्यु. इन मुंबई सर्कल-५	पी. पीटरसन	अं.	रॉयल एशियाटीक जर्नल	400
125	कलेक्शन ऑफ प्राकृत एन्ड संस्कृत इन्स्क्रीप्शन्स	पी. पीटरसन	अं.	भावनगर आर्चीऑलॉजीकल डिपार्टमेन्ट, भावनगर	320
126	विजयदेव माहात्म्यम्	जिनविजयजी	सं.	जैन सत्य संशोधक	148

श्री जिनदत्तसूरिप्राचीनपुस्तकोद्धारफण्ड (सुरत) ग्रन्थाङ्कः—४३

अर्हम् ।

श्रीमत्खरतरगच्छाधीश्वर-श्रीअकब्बरसाहिप्रतिबोधक-जङ्गम-युगप्रधान-भट्टारक-श्रीमज्जिनचन्द्रसूरिशिष्य-पण्डितप्रवर-महोपाध्याय-सकलचन्द्रगणिशिष्योपाध्याय-

श्रीसमयसुन्दरगणिग्रथिता

श्री गाथासहस्री ।

जङ्गम-युगप्रधान-भट्टारक-श्रीमज्जिनकृपाचन्द्रसूरीश्वराणां शिष्यरत्नोपाध्याय-श्रीसुखसागरोपदेशात् (मुम्बय्यां) कोटस्थानस्थ-श्रीशान्तिनाथजैनमन्दिर-पेढीकार्यवाहकप्रदत्तेन शा. मानचन्दभाई मगनभाई श्रेष्ठिवर्यस्य धर्मपत्नी श्रीमती चुनीबाईप्रदत्तेन च द्रव्यसाहाय्येन

मुम्बय्यां निर्णयसागरमुद्रणालये

मुद्रापयित्वा प्रकाशितम् ।

प्रकाशक—जव्हेरी मुलचन्द हीराचन्द भगत, मुम्बई ।

विक्रमसंवत् १९९६ प्रतयः—५०० भेट ईस्वीसन् १९४०

"Aho Shrut Gyanam"

द्रव्यसाहाय्यक—

१५१) श्रीशान्तिनाथस्वामि-जैनमन्दिर पेढी, कोट, (मुम्बई)

१००) शा० मानचन्दभाई मगनभाई धर्मपत्नी चुनीबाई, (पालनपुर—निवासी)

Published by Jhaweri Moolchand Hirachand Bhagat, Mahavir Jain Mandir, Pydhuni, Bombay.

Printed by Ramchandra Yesu Shedge, Nirnaya Sagar Press, 26-28 Kolbhat Street, Bombay.

पुस्तकप्राप्तिस्थानम्—

श्रीजिनदत्तसूरिज्ञानभंडार, ठिं० गोपीपुरा,

सीतलवाडी उपासरा, मु० सुरत

"Aho Shrut Gyanam"

निवेदनम्

सुप्रसिद्ध कविवर्य उपाध्याय **श्रीसमयसुंदरगणि** संगृहीत यह **"गाथासहस्री"** नामक ग्रन्थरत्न विद्वज्जनोंके विनोदार्थ प्रकाशित किया जा रहा है इनका अस्तित्वसमय सत्रहवीं (१७) शताब्दी है। श्रीजिनचंद्रसूरिजीके मुख्य शिष्य उ० **सकलचंद्रगणि** थे (कल्पसूत्र कल्पलताटीका पृ. ६८२) उनके शिष्य **समयसुन्दरजी** थे जिन्होने लघुवयमेंही तर्क-व्याकरण-साहित्य वगैरहका इन्होंने अभ्यास करलिया था ओर गुरुमुखसे जैनागमोंका अभ्यासकरके फलस्वरूप संस्कृतभाषामें ग्रंथोंकी रचना की और बहुतसे स्तवन-रास-चोपाइ वगैरह गुजरातिभाषामें निर्म्माण किये।

प्रस्तुत ग्रंथ उ० **समयसुन्दरजी** ने सं. १६८६ में रचा है। यह ग्रंथ पंडित जनोंके मुखकी शोभा रूप तांबुलके सदश है और व्याख्यानदाताओंके लिये तो बहुतही उपयोगी है ग्रंथकार खुदही इस प्रकार कहते है—

व्याख्याचातुर्यवाञ्छा यदि भवति तदा शास्त्रमेतत् समग्रम्,
कंठे कृत्वा विशेषाऽवगमपरमार्थं गृहीत्वा गुरूक्तेः ।
व्याख्याकाले विचाले प्रवरमवसरं प्राप्य वाच्यं प्रसक्तं,
सभ्येभ्यानां पुरस्तात् चतुरनरचमत्कारकारं च भावि ॥ ३ ॥ (पृ० ५०)

यदि आप प्रखर वक्ता बनना चाहते हों तो यह सारा ग्रन्थ मुँह जबान करके, गुरुके मुखारविंदसे ग्रन्थका गूढार्थ समझके हरहमेश सभा समक्ष प्रवचन करते समय समयानुसार सुभाषित पद्य बोलनेसे, सज्जनोंके चित्तको (आप अवश्य) आश्चर्य करनेवाले होगे.

आभारदर्शन—

[१] **श्रीमोहनलालजी** ज्ञानभण्डार (सूरत), [२] **श्रीजिनदत्तसूरि** ज्ञानभण्डार (सूरत)

[३] **श्रीजिनदत्तसूरि** ज्ञानभण्डार (बम्बई), [४] **श्रीजिनकृपाचंद्रसूरि** ज्ञानभण्डार (बीकानेर) प्रस्तुतः ग्रन्थरत्न संशोधन करनेमें उपरोक्त भंडारोंकी प्रतियोंकी सहायता ली गई है अतएव उक्त भण्डारोंके सञ्चालकमहाशयोंको और द्रव्यसहायक सज्जनोंको यहाँपर धन्यवाद दिया जाता है.

---

१ **कल्पसूत्रकी** कल्पलताटीका जो इसी सीरीझकी ओरसे प्रकाशित हो चुकी है-जिसमें H. D. **वेलणकर** (प्रो० ऑफ संस्कृत विल्सन कॉलेज, बॉम्बे) महाशयका विद्वत्तापूर्ण लिखा हुआ Introduction है और श्रीयुत **मोहनलाल** दलीचंद देशाई (B. A. LL B. Advocate) का अति परिश्रमसे लिखा हुआ **उपोद्‌घात** दिया गया है इस ग्रंथको देखनेसेही इसका महत्व विद्वानोंको अच्छी तरहसे ज्ञात हो सकेगा।

२ **समयसुन्दरजी** महाराज जैसे बाल्यावस्थामें विद्याकी ओर प्रेम रखते थे उसी तरह बडी अवस्थामें अपने शिष्योंको भी विद्वान बनानेके लिये परिश्रम करते थे। उन्होंने अपने बालमुनिशोंको बोध देनेके लिये एक स्वाध्याय भी बनाया था जो इस प्रकार है—

भणोरे चेलाभाई भणोरे भणो, भण्या माणसने आदर घणो ।
भण्याने हुए भलो वहराषणो, सखरवस्त्र पहिर ओढणो ।
पद हुवे वाचक पाठक तणो, बाजोठ उपर बेसणो ।
भणिया पाखे दुख देखणो, खांधे झोली हाथमें दोहणो (=घडो) ।
समयसुन्दररो शब्द मानणो, इह परलोक सुहावणो । इति ॥

३ संवत् १७६२ वर्षे कार्तिक वदि पांचमी दिने बुधवारे श्रीमत्पत्तने सालविपाटके श्री**जिन**चन्द्रसूरिविजयराज्ये लिखिता प्रतिरियं विनेय पं० रंगविलासेन श्रीरस्तु ।

४ संवत् १८१६ मिति वैशाख शुक्लैकादश्यां ११ तिथौ गुरुवारे लि.पिकृतं पं० मतिमंदिरेन इदं पुस्तिका श्रीरस्तु ॥

५ संवत् १९५६ श्रावण वद १३ पं० रिद्धकर्ण ॥

"Aho Shrut Gyanam"

संशोधन—

"श्रीजिनदत्तसूरि प्राचीन पुस्तकोद्धार फण्ड"–(सूरत) से ४१ वाँ **"सामाचारी शतक** नामक ग्रन्थ प्रकाशित किया गया है उसके निवेदनमें "४ प्रति પાટણના ભંડારમાંથી સાહિત્યપ્રેમી મુનિ શ્રી પુણ્યવિજયજીના અનુગ્રહથી" इस प्रकार लिखा है लेकिन वह प्रति पाटनके भण्डारकी न समझकर प्रवर्तक मुनि श्रीकान्तिविजयजीके भंडारकी समझना.

पूज्य गुरुवर्य्य श्रीउपाध्याय **सुखसागरजी**महाराजने यह ग्रन्थका संशोधन करनेमें अति परिश्रम उठाया है, और श्रीयुत **मोहनलाल भगवानदास** झवेरी सोलिसिटर महाशयने भी प्रुफ देखनेमें स्वसमयका भोग दिया है और इस ग्रंथकी प्रस्तावना तथा ग्रंथसार लिखनेका भी परिश्रम लिया है प्रस्तुत ग्रन्थमें किसी भी तरहकी अशुद्धि रहगई हो तो सज्जन महाशय सुधारेंगे और पठन–पाठन कर संशोधक महाशयका परिश्रम सफल करेंगे यही शुभेच्छा.

संवत् १९९६ मार्गशीर्ष शु० ३
ता० १३–१२–३९, **बम्बई.**

निवेदक—
मुनिमंगलसागर.

"Aho Shrut Gyanam"

गाथासहस्री ।

પ્રસ્તાવના

सच्छंदा य सरूवा सालंकारा य सरसउल्लावा ।
वरकामिणिव्व गाहा गाहिज्जंती रसं देई ॥ ८३२ ॥

ગ્રંથકર્તા ને ગ્રંથરચનાકાળ

આ ગ્રંથ 'ગાથાસહસ્રી'ના કર્તા ઉપાધ્યાય શ્રીસમયસુંદર છે. યુગપ્રધાન શ્રીજિનચંદ્રસૂરિ, કે જે ખરતરગચ્છના એક સુપ્રસિદ્ધ આચાર્ય હતા, ને જેણે સમ્રાટ્ અકબરને સંવત્ ૧૬૪૯માં લાહોરમાં જૈન ધર્મનો ઉપદેશ કર્યો હતો, તેમના શિષ્ય ઉપાધ્યાય શ્રીસકલચંદ્રગણિના તેઓ શિષ્ય હતા. આ ગ્રંથ ઉપાધ્યાય શ્રીસમયસુંદરે સંવત્ ૧૬૮૬માં રચ્યો હતો.

ગાથાસપ્તશતી અને ગાથાસહસ્રી

આ ગ્રંથમાં ભિન્ન ભિન્ન આગમ તેમજ પ્રકરણ ગ્રંથોમાંથી વ્યાખ્યાનમાં ઉપયોગી થઈ પડે, તેમજ ધર્મચર્ચાઓમાં પણ પ્રમાણભૂત ગણાય, તેવાં અવતરણોનો તેમજ કેટલાંક સુભાષિતો ને અન્યોક્તિઓનો સંગ્રહ કરવામાં આવ્યો છે; મોટે ભાગે ગાથાઓનો જ સંગ્રહ છે. જૈનેતર ગ્રંથો મહાભારત, પદ્મપુરાણ, માનવી સ્મૃતિ આદિમાંથી પણ ઉતારા અપાયા છે. આ ગ્રંથનું નામ 'ગાથાસહસ્રી' રાખ્યું છે, તે પરથી પ્રસિદ્ધ 'ગાથાસપ્તશતી'નું આપણને સહજ સ્મરણ થાય. પ્રસિદ્ધ જૈનાચાર્ય પાદલિપ્તસૂરિ, જે પાલિત્ત કવિ તરીકે પણ જાણીતા છે, તેણેજ 'ગાથા સપ્તશતી'માંની ગાથાઓનો મોટો ભાગ રચ્યો છે એવી માન્યતા હોઈ પ્રસ્તુત ગાથા સંગ્રહ કરવાને ગ્રંથકર્તાને પ્રેરણા મળી હોય; અને 'ગાથાસપ્તશતી' જેમ શૃંગારિક સુભાષિતોનો હૃદયંગમ રસમય સંગ્રહ છે, તેવોજ શાંતરસનો રસમય સંગ્રહકરવાનો ઉદ્દેશ ગ્રંથકર્તાનો હોય તે સંભવિત છે. બનવા જોગ છે કે આનું નામ પણ 'ગાથાસપ્તશતી' રાખવાનો શરૂમાં તેમનો ઇરાદો હોય, કારણ કે છેવટના ભાગનાં સંસ્કૃત સુભાષિતો બાદ કરીએ તો સાડાસાતસોની આસપાસ પ્રાકૃત સૈદ્ધાંતિક ગાથાઓની સંખ્યા થાય છે. પછી ગ્રંથનું નામ જુદું રાખવું જોઇએ એ હેતુથી, કે સંગ્રહમાં ગાથાઓ વધી જવાથી—જો કે પૂરી સહસ્ર નથી પણ—લગભગ સહસ્ર હોવાથી, ગ્રંથનું નામ 'ગાથાસહસ્રી' પસંદ કરવામાં આવ્યું હોય.

બન્ને ગ્રંથો વચ્ચે બીજી રીતે મુકાબલો યોગ્ય નથી, કારણ કે 'ગાથા સપ્તશતી'માં કેવળ શૃંગાર રસને પોષવાના હેતુથી કાવ્યની દૃષ્ટિએ ઉત્તમ કોટિની ગાથાઓનો સંગ્રહ કરવામાં આવ્યો છે; જ્યારે અહિંયાં તો વ્યાખ્યાનમાં તથા ધર્મચર્ચામાં સંક્ષેપથી પણ સચોટ રીતે કથન કરી શકાય એવી સુંદર ગાથાઓનો સંગ્રહ કરવામાં આવ્યો છે. ટૂંકમાં અહિંયાં સંગૃહીત ગાથાની સંખ્યાના પ્રમાણમાં મોટી સંખ્યાના વિષયની ચર્ચા તથા માહિતી મળે છે. આ જ કારણે ગ્રંથનો કંઈક વિસ્તૃત સાર નીચે આપવામાં આવ્યો છે. તે પરથી વાચકને ઉપાધ્યાય શ્રી સમયસુંદરનાં સૈદ્ધાંતિક ગ્રંથોનું તેમજ અન્ય ગ્રંથોનું વિશાલ વાચન, વિવેચક બુદ્ધિ, હૃદયંગમતા, સભારંજકતા, વ્યાખ્યાન—કુશલતા આદિનો ખ્યાલ આવશે અને તેની બહુશ્રુતતા પ્રતીત થશે.

ગ્રંથકર્તાનું ચરિત્ર તથા તેના અન્યગ્રંથો

ઉપાધ્યાય શ્રીસમયસુંદરગણિનો જન્મ સાચોર—સત્યપુર (જે સ્થળ શ્રીમહાવીરસ્વામિના પ્રસિદ્ધ ચૈત્યને લઇને ખૂબ ખ્યાતિ પામ્યું હતું)માં થયો હતો. તે હકીકત તેમણે સ્વરચિત 'સીતારામ ચોપાઇ'ના છઠા ખંડની ત્રીજી ઢાળમાં જણાવી છે. પોરવાડ જ્ઞાતિના રૂપશી પિતા તથા લીલાદે માતાથી તેમનો જન્મ થયો હતો. તેમની જન્મસાલ ચોક્કસ મળી નથી; પણ તે સંવત્ ૧૬૨૦ની આસપાસ હશે એમ તેમણે રચેલા પહેલા સંસ્કૃત ગ્રંથ 'ભાવશતક'ની સાલ સંવત ૧૬૪૧ છે તે પરથી લાગે છે. વળી તેમને દીક્ષા આપનાર શ્રીજિનચંદ્રસૂરિને સૂરિપદ સં. ૧૬૧૨માં મળ્યું હતું તે પરથી શ્રીસમયસુંદરને સં. ૧૬૧૨ પછી જ દીક્ષા આપવામાં આવી હશે તે સિદ્ધ થાય છે. સંવત્ ૧૬૨૮ના શ્રીજિનચંદ્રસૂરિના આગ્રાથી 'સાંભલિ'ના સંઘને લખેલ પત્રમાં તેમનું નામ ન હોવાથી શ્રીસમયસુંદરે ત્યારબાદ દીક્ષા લીધી હશે એમ અનુમાન થાય છે.

ગ્રંથકર્તાએ રચેલાં સંસ્કૃત પ્રાકૃત ગ્રંથો ટીકાઓ સાલવાર નીચે દર્શાવ્યાં છે. (૧) भावशतकम् સં. ૧૬૪૧, (૨) अष्टलक्षी સં. ૧૬૪૯, (૩) रूपकमालावचूर्णिः સં. ૧૬૫૩, (૪) चातुर्मासपर्वव्याख्यानपद्धतिः સં. ૧૬૬૫, (૫) कालिकाचार्यकथा સં. ૧૬૬૬, (૬) श्रावकाराधना સં. ૧૬૬૭, (૭) सामाचारीशतकम् સં. ૧૬૭૨, (૮) विशेषशतकम् સં. ૧૬૭૨, (૯) गाथालक्षणम् સં. ૧૬૭૩, (૧૦) विचारशतकम् સં. ૧૬૭૪, (૧૧) दुरियरसमीरवृत्तिः (શ્રીજિનવલ્લભસૂરિકૃત વીરસ્તવ—વૃત્તિ) સં. ૧૬૮૪ (૧૨) विशेष-संग्रहः સં. ૧૬૮૫, (૧૩) विसंवादशतकम् સં. ૧૬૮૫, (૧૪) श्रीकल्पसूत्र—कल्पलतावृत्तिः સં. ૧૬૮૫, (૧૫) गाथासहस्री સં. ૧૬૮૬, (૧૬) भक्तामरसुबोधिनीवृत्तिः સં. ૧૬૮૭, (૧૭) जयतिहुअणवृत्तिः સં. ૧૬૮૭, (૧૮) नवतत्त्व—दंडकादिवृत्तिः સં. ૧૬૮૮ તથા ૧૬૯૬ (૧૯) दशवैकालिकवृत्तिः સં. ૧૬૯૧, (૨૦) संदेहदोलावलीपर्यायः સં. ૧૬૯૩, (૨૧) वृत्तरत्नाकरवृत्तिः સં. ૧૬૯૪ (૨૨) रघुवंशटीका સં. ૧૬૯૫, (સં. ૧૬૯૨ શ્રી નાહટાપ્રમાણે) (૨૩) समसरणवृत्तिः સં. ૧૬૯૫, (૨૪) कल्याणमंदिरटीका સં. ૧૬૯૫, (૨૫) ऋषभभक्तामर સં. ૧૬૯૫, (૨૬) (अल्पत्व-बहुत्व-गर्भित) महावीरस्तव स्वोपज्ञवृत्ति-सहित, (૨૭) विमलयमलस्तुतिवृत्तिः, (૨૮) वाग्भट्टालंकारवृत्तिः, (૨૯) प्रश्नोत्तरसारसंग्रहः, (૩૦) सारस्वतरहस्यं (જુઓ નાહટાકૃત 'યુગ-પ્રધાન શ્રીજિનચંદ્રસૂરિ' પૃ. ૧૬૮—૧૭૧).

એમની ગુજરાતી કૃતિઓ માટે જુઓ શ્રી મોહનલાલ દલીચંદ દેસાઈકૃત 'કવિવર સમયસુંદર' નામનો લેખ જે આનન્દકાવ્યમહોદધિ, મૌક્તિક ૭માંની પ્રસ્તાવનામાં મુદ્રિત થયો છે.

"Aho Shrut Gyanam"

એમના ઉપર દર્શાવેલા સંસ્કૃત પ્રાકૃત તથા ગુજરાતી ગ્રંથરાશિ પરથી તેમજ તેમાં ચર્ચેલા વિવિધ વિષયો પરથી તેઓ અનેક વિષયમાં પારંગત બહુશ્રુત વિદ્વાન્ હતા, તેમજ પ્રથમ પંક્તિના કવિ, છંદશાસ્ત્રી, વૈયાકરણી, સિદ્ધાંતના જ્ઞાતા, સંગ્રહકાર, વ્યાખ્યાનકાર તથા ટીકાકાર હતા, અને સંસ્કૃત પ્રાકૃત પર પણ ગુજરાતી ભાષાની જેમ પ્રભુત્વ ધરાવતા હતા–તે સ્પષ્ટ થાય છે. તેમના મુખ્ય શિષ્ય હર્ષનંદને સંવત્ ૧૬૭૩માં રચેલી 'મધ્યાહ્નવ્યાખ્યાનપદ્ધતિ'માં તેમને માટે કરેલા ઉદ્ગારોનો સાર ગુજરાતીમાં એ છે કે તેમણે વ્યાખ્યાનકાર, કવિ, વાદી, વૈયાકરણી, સાહિત્યક, જ્યોતિષ્વેત્તા તથા સૈદ્ધાન્તિક તરિકે ખ્યાતિ મેળવી હતી, તેમને શિષ્ય પ્રશિષ્યની ઘણી સંતતિ હતી, તેઓ લોક પ્રિય તથા રાજપ્રિય હતા, અને એક જ પદમાં આઠ લાખ અર્થ પ્રાપ્ત કરવાની ચમત્કારી શક્તિ ધરાવતા હતા. છેલ્લી બાબત તેમણે રચેલા 'અષ્ટલક્ષી' ગ્રંથને ઉદ્દેશીને છે કે જેમાં એક જ પદના તેમણે આઠ લાખ અર્થ કર્યાં છે. તે ગ્રંથ તેમણે સંવત્ ૧૬૪૯માં જ્યારે શ્રીજિનચંદ્રસૂરિએ બાદશાહ અકબરની લાહોરમાં મુલાકાત લીધી ત્યારે તેમની સાથે દરબારમાં જઈ બાદશાહને જાતે વાંચી સંભળાવી પ્રસન્ન કર્યો હતો. બાદશાહે તે ગ્રંથ પોતાના હાથમાં લઈ 'પઠન કરાવો, સર્વત્ર વિસ્તાર–ફેલાવો પામો, સિદ્ધિ પામો' એવી શુભેચ્છા દર્શાવી શ્રી સમયસુંદરના હાથમાં તે ગ્રંથને મૂકયો હતો. તેજ વર્ષમાં એટલે સંવત્ ૧૬૪૯ના ફાગણ સુદ બીજને દિને જ્યારે શ્રીજિનચંદ્રસૂરિને બાદશાહે યુગપ્રધાન પદ આપ્યું, ત્યારે શ્રી માનસિંહને શ્રીજિનસિંહસૂરિ નામ આપી આચાર્ય પદ, તથા શ્રીસમયસુંદર તેમજ શ્રીગુણવિનયને વાચક પદ અપાયું હતું. શ્રીસમયસુંદરને ત્યારબાદ ઉપાધ્યાય–પાઠકપદ લવેરે શહેરમાં ઉક્ત શ્રીજિનસિંહસૂરિએ આપ્યું હતું. સંવત્ ૧૬૭૪માં શ્રીજિનસિંહસૂરિ સ્વર્ગસ્થ થયા અને તેમની પાટે શ્રીજિનરાજસૂરિ આવ્યા. તેમની સાથે જ એક જ દિવસે સૂરિપદ પામેલા શ્રીજિનસાગરસૂરિએ બાર વર્ષ સુધી શ્રીજિનરાજસૂરિની આજ્ઞામાં રહ્યા પછી સંવત્ ૧૬૮૬માં લઘ્વાચાર્યીય ખરતર ગચ્છની ભિન્ન શાખા કાઢી. એમાં શ્રી સમયસુંદરના નવ્યન્યાય–નિપુણ વિદ્વાન્ શિષ્ય શ્રી હર્ષનંદન કારણભૂત હતા એમ કહેવાય છે. ત્યારથી શ્રીજિનસાગરસૂરિની આજ્ઞામાં શ્રીસમયસુંદર ઉપાધ્યાય અંત સુધી રહ્યા. સંવત્ ૧૬૯૧માં શ્રી સમયસુંદરે ક્રિયોદ્ધાર કર્યો. સંવત્ ૧૭૦૨ના ચૈત્ર શુક્લ ૧૩ને દિને અમદાવાદમાં, જ્યાં સંવત્ ૧૬૯૬થી વૃદ્ધાવસ્થાને લઇને તેઓ રહેતા હતા ત્યાં હાજા પટેલની પોળના ઉપાશ્રયમાં, ઉપાધ્યાય શ્રીસમયસુંદર સ્વર્ગસ્થ થયા. ત્યારે તેમની ઉમ્મર ૮૦ વર્ષ આસપાસની હશે. તેમની શિષ્ય પરંપરા સંવત્ ૧૮૨૨ સુધી તો હતી જ એમ તેમની પરંપરામાં થયેલ શ્રીકુશલચંદ ઉપાધ્યાયના શિષ્ય શ્રીઆશકરણના શિષ્ય શ્રીઆલમચંદે તે વર્ષમાં રચેલી 'સમ્યકત્વ કૌમુદી ચતુષ્પદી'ની પ્રશસ્તિ પરથી માલમ પડે છે. ઉપાધ્યાય શ્રીસમયસુંદરના શિષ્ય શ્રીહર્ષનંદને શ્રીસુમતિકલ્લોલ સાથે શ્રીસ્થાનાંગસૂત્ર–વૃત્તિમાંની ગાથાઓ પર ૧૩૬૦૪ શ્લોક–પ્રમાણ વૃત્તિ રચી હતી તથા એકલા ઉત્તરાધ્યયનવૃત્તિ રચી હતી.

પ્રસ્તુત ગ્રંથ ગાથાસહસ્રીમાં ગ્રંથકર્તાએ સાત નિહ્નવોની આવશ્યકચૂર્ણિમાંની ૧૬ ગાથા ટાંકી તેના વિવેચન માટે પોતાના 'વિશેષસંગ્રહ'નો હવાલો આપ્યો છે. એ ઉપરાંત પોતાના 'વિશેષશતક'નો પણ ઉલ્લેખ આ ગ્રંથમાં કર્યો છે. એમનો 'વિસંવાદશતક' ગ્રંથ સિદ્ધાંતમાંના વિસંવાદ સંબંધી ઉપયોગી ચર્ચાનો ગ્રંથ છે. આ ગ્રંથો ઉપરાંત 'વિચારશતક' 'સામાચારીશતક', તેમની સિદ્ધાંતપ્રિયતા દર્શાવે છે. તેમણે સિદ્ધપુરમાં મહમદ શેખને પ્રતિબોધ્યો હતો. સિંધના મખનૂમ શેખને પ્રતિબોધી પાંચ નદીના જલચર જીવો તથા ગાયોની રક્ષા કરી હતી. જેસલમેરમાં રાવલ ભીમજીને ઉપદેશ આપી સાંડાનો–સાંઢનો વધ અટકાવ્યો હતો. આ તેમની પ્રતિબોધકશક્તિના પ્રત્યક્ષ દૃષ્ટાંતો છે.

પ્રસ્તુત ગ્રંથ વાંચતાં જ એ તરી આવે છે કે કર્તાને કવિદૃષ્ટિ હતી (ગા. ૭૬૬–૭૬૮) તથા સુભાષિતનો અત્યંત શોખ હતો કારણ કે પ્રાકૃત સિદ્ધાંતની ગાથાઓમાં પણ વચ્ચે વચ્ચે કવચિત્ સંસ્કૃત ને કવચિત્ પ્રાકૃત સુભાષિતો ટાંકયાં છે (ગા. ૨૭૨–૨૯૦, ૩૪૨–૪૨૮). કેવલ જ્યોતિષ ને શકુનને લગતી ગાથાઓ પણ તે વિષયના ગ્રંથમાંથી ઉતારી છે (ગા. ૪૩૭–૪૪૦,૪૫૮, ૭૬૯–૭૭૦). પ્રાણાયામ ધ્યાન પણ તેમનો પ્રિય–વિષય હશે (ગા. ૧૯૮–૨૦૭). વ્યવહારની બલવત્તા પણ તેઓ બતાવે છે (ગા. ૨૦૮–૨૦૯). ગાનાર તથા સાજિંદાની વિવિધ મંડલી પણ તેમણે લૌકિક નાટક માટે વર્ણવી છે (ગા. ૩૯૨–૩૯૩). ગ્રંથકર્તા સંગ્રહ કરતી વખતે ગચ્છાદિ ભેદને લક્ષમાં લેતા નથી. તેમણે રત્નશેખરસૂરિના 'શ્રાદ્ધવિધિ,' આચાર પ્રદીપ' તેમજ શ્રીદેવસુન્દરની તથા શ્રીસોમસુન્દરની સામાચારીમાંથી અને છેવટે ૧૧ સુંદર ગાથા ચિત્રાવાલગચ્છીય (તપાગચ્છીય) શ્રીદેવેન્દ્રસૂરિના 'सुदंसणाचरियम्' (જેનું ખરૂં નામ 'सुदंसणाकहा' છે)માંથી આપી છે. ટૂંકમાં સુભાષિત રત્નોનો સંગ્રહ સાચી ગુણગ્રાહિતાથી સ્થળે સ્થળેથી ઝવેરી જેમ રત્નોનો સંગ્રહ કરે તેમ કર્યો છે. 'શ્રાવકવિધિ' શ્રાવક પંડિત ધનપાલની રચેલી છે તેમાંથી પણ તેમણે અવતરણો કર્યા છે (પૃષ્ઠ ૧૯). એમનો હાસ્યપ્રિય આનંદીસ્વભાવ પણ (ગા. ૨૫૬, ૮૪૦) સ્થળે સ્થળે તરી આવે છે. વિશેષ ગ્રંથના અભ્યાસથી માલમ પડે એમ છે. છતાં ગુજરાતી વાંચક માટે નીચે ગાથા સહસ્રીનો સાર આપ્યો છે તે ઉપરથી તેમને પણ ખાતરી થશે.

આ ગ્રંથ સાથે ટિપ્પણ અપાયું છે તે સ્વોપજ્ઞ નથી. તેના કર્તાનું નામ આપેલ નથી તેથી તે કોણે રચ્યું તે કહી શકાય એમ નથી. તેમાં અશુદ્ધિ વિશેષ માલમ પડી છે ને કેટલેક સ્થળે મૂળ ગ્રંથની ગાથા સાથનો સંબંધ સ્પષ્ટ નથી (જુઓ પૃષ્ઠ ૬ના ૩ જા ટિપ્પણમાંની "मइनै पूजी अरणी मरणी" ઇત્યાદિ). ટિપ્પણકાર જ્યાં મૂળમાંની ગાથા પર ટીકા ઉપલબ્ધ છે ત્યાં ટીકાભાગ ટૂંકાવી પ્રાયઃ તેજ શબ્દોમાં ટિપ્પણ આપે છે. ભાષા પરથી ટિપ્પણકાર સંવત્ ૧૮૦૦ આસપાસ થયાનું અનુમાન થાય છે.

ગાથાસહસ્રીસાર

હવે ગાથા સહસ્રીનો પૃષ્ઠાનુક્રમથી સાર આપીશું જે પ્રાકૃતથી અનભિજ્ઞ વાંચકોને ઉપયોગી થઈ પડશે, તેમજ વિષયાનુક્રમની પણ ગરજ સારશે.

પ્રથમ આચાર્યના ૩૬, સાધુના ૨૭ તથા શ્રાવકના ૨૧ ગુણો દર્શાવી નવકારવાળીના ૧૦૮ મણકાનો સંબંધ પંચપરમેષ્ઠિના ૧૦૮ ગુણો સાથે છે, તે દર્શાવ્યું છે પૃષ્ઠ ૧.

પછી જિનકલ્પીના ૮ ભેદ ને ૧૨ ઉપકરણો તથા સ્થવિરકલ્પીના ૧૪ ઉપકરણો વર્ણવ્યાં છે. શ્રાવક કુળમાં જન્મની પ્રશંસા અને તપસ્વી અને જ્ઞાની બે પ્રકારના ગુરુમાં જ્ઞાની પોતાને તેમજ પરને તારે છે એમ કહ્યું છે. પૃષ્ઠ ૨.

"Aho Shrut Gyanam"

સાધુની દશ પ્રકારની સામાચારી કહી, ઋતુમાં સ્ત્રી શું ન કરે તે કહી, મનુષ્ય, હાથી, ઘોડા, ઉંટ, ગધેડા, ગાય, ભેંસ, બકરા, કુતરાનાં વિવિધ ઉત્કૃષ્ટ આયુષ્ય કહ્યાં છે. વાસુદેવો નરકે તથા બલદેવો સ્વર્ગે જાય છે તે કહી, શ્રીઋષભદેવનું અશોકવૃક્ષ ત્રણ ગાઉ, શ્રીમહાવીરનું બત્રીશ ધનુષ, તથા અન્યતીર્થંકરોનું સ્વશરીરથી બારગણું ઉંચુ હોય તે તથા શ્રીજંબુ મોક્ષે જતાં દશસ્થાન વિચ્છિન્ન થયાં તે કહ્યાં છે. ચૌદપૂર્વી સંસારમાં કુલે ચાર વાર સુધી તથા એક ભવમાં ઉત્કૃષ્ટ બે વાર આહારક શરીર કરે. સ્ત્રીને જે દશ લબ્ધિ ન થાય તે, તથા વિવિધ જીવોની ઉત્પત્તિનાં સ્થળો સુધોષા ઘંટાનું પ્રમાણ, તથા પડિલેહણાના પ્રકાર વર્ણવ્યાં છે. પૃષ્ઠ ૩.

પછી ૨૮ લબ્ધિ વર્ણવી અભવ્ય પુરુષ તથા સ્ત્રી જે લબ્ધિ ન પામે તે કહી, મુખવસ્ત્રિકા તથા દેહ–પ્રતિલેખનાના વિચાર કહી, સોળ પ્રકારના રોગનો ઉલ્લેખ કરી, પૌષધ તથા સામાયિકમાં દેવાયુ બન્ધનું પ્રમાણ કહ્યું છે. પૃષ્ઠ ૪.

તજવા યોગ્ય નવ નિયાણાં કહી તે બાંધનારને સમ્યક્ત્વ, દેશવિરતિપણું, સર્વવિરતિપણું આદિ શું પ્રાપ્ત ન થાય તે કહ્યું છે. પછી કોટિશિલા વર્ણવી દરેક વાસુદેવ તે કેટલે સુધી ઉપાડી શકે છે તે કહ્યું છે. દિવ્ય કામભોગ, આઠ પ્રકારના પ્રભાવક, કંબલરત્ન, દેવતાઓને મુકાબલે જિનેશ્વરનું રૂપ, ૨૪ તીર્થંકરોના સમ્યક્ત્વ પ્રાપ્તિથી સિદ્ધિપર્યંત થયેલ ભવો, તીર્થંકરનાં પ્રતિદિનનાં દાનનું તથા કુલ સાંવત્સરિક દાનનું પ્રમાણ, પાત્ર પરત્વે દાન–ફલની વિશેષતા તથા સાતક્ષેત્ર વર્ણવ્યાં છે. પૃષ્ઠ ૫.

શ્રીસ્થૂલભદ્ર સાથે ત્રણ સ્થાન વિચ્છિન્ન થયાં તે, તીર્થંકર ભગવાન પાસે જવાનું ઋદ્ધિ જોવા, તત્ત્વબોધ અર્થે, કે શંકાનાં નિરાકરણ અર્થે થાય તે કહી, સારણા, વારણા, ચોયણા, પડિચોયણાના ભિન્ન હેતુ કહ્યા છે. ઉત્કૃષ્ટ વિકુર્વણાકાળ–નારકીનો મુહૂર્તનો ભાગ, તિર્યંચ ને મનુષ્યનો ચાર મુહૂર્ત, તથા દેવનો અર્ધમાસ કહ્યો છે. ૨૪ તીર્થંકરોના માત પિતાની ભિન્ન ભિન્ન ગતિઓ કહી છે. સાધુને કલ્પે એવાં જળના ત્રણ પ્રકાર કહી, ત્રણ ઋતુનાં પાણીના ત્રણ કાળ કહ્યા છે. વિવિધ વસ્તુ કેટલો સમય અચિત્ત રહે છે તે કહી, વિદલ ભોજનમાં જીવોત્પત્તિ વર્ણવી, સાધુની સાત મંડલી કહી છે. પૃષ્ઠ ૬.

પછી અગત્યના ઐતિહાસિક બનાવોની સાલો ગચ્છોત્પત્તિ ને તીર્થોદ્ગાલિપયન્નામાંથી આપી છે. કાલ, સ્વભાવ, નિયતિ, પૂર્વકૃત તથા પુરુષકાર એ પાંચ સમવાય સમસ્તપણે કાર્યના કારણ માનવામાં સમ્યક્ત્વ અને વિપરીતપણે માનવામાં મિથ્યાત્વ કહ્યું છે. પછી ક્રિયાવાદીના ૧૮૦, અક્રિયાવાદીના ૮૪ અજ્ઞાનીના ૫૭ તથા વૈનયિકના ૩૨ ભેદો તથા તેમનાં મુખ્ય મંતવ્ય કહ્યાં છે. પૃષ્ઠ ૭.

સામગ્રીના અભાવે વ્યવહારરાશિમાં પ્રવેશ ન થવાથી સિદ્ધિ સુખ પામતા નથી એવા ભવ્યો પણ અનંત છે. અભવ્ય જીવો ઇંદ્રપણું ચક્રિપણું અનુત્તરવિમાનવાસિદેવપણું ને લોકાંતિક–દેવપણું પામતા નથી. 'મિચ્છામિ દુક્કડ'ના પ્રત્યેક અક્ષરના સૂચક અર્થ તથા ૪૫ આગમનાં નામ કહ્યાં છે. અવિધિથી કરવા કરતાં ન કરવું સારૂં એ કથન શ્રુતસમ્મત નથી કારણ કે ન કરવાથી વધારે ભારે પ્રાયશ્ચિત્ત કહ્યું છે. પદાર્થ કેમ અચિત્ત થાય કે ઓળખાય તે કહી, મૈથુન સિવાયના કશાનો એકાંત નિષેધ કે આદેશ ભગવાને કર્યો નથી એ કહ્યું છે. કેવળી સમુદ્ઘાત ક્યારે કરે તે કહી, વેદનીય કર્મની બાર મુહૂર્તની, નામ તથા ગોત્ર કર્મની આઠ મુહૂર્તની, ને બાકીના પાંચ કર્મની અંતર્મુહૂર્તની જઘન્ય સ્થિતિ કહી છે. અલ્પ પ્રયોજનમાં સાધુ જે પદાર્થ ન સેવે તે કહ્યા છે. પૃષ્ઠ ૮.

પછી અહિંસાનું મહત્ત્વ દર્શાવી ત્રિકાળ જિન–પૂજનથી તીર્થંકરનામકર્મ બાંધે એમ કહી, મેરુ પર્વત જેટલાં સુવર્ણનાં દાનથી પણ એક જીવના ઘાતના પાપમાંથી ન છૂટે એ કહી, અનુકંપાનો નિષેધ શ્રાવકને કર્યો નથી એ કહી, સાધુને ઉત્તમ, દેશવિરતિ શ્રાવકને મધ્યમ, તથા અવિરતિ શ્રાવકને જઘન્ય પાત્ર કહ્યાં છે. શ્રુતની અવગણના ન થાય તે માટે કેવળી પણ છદ્મસ્થે સામાન્ય શ્રુત ઉપયોગથી આણેલા છતાં અશુદ્ધ આહારાદિક પણ ગ્રહણ કરે. સ્વામિવાત્સલ્ય શ્રાવકનું કર્તવ્ય બતાવ્યું છે. ભારે ચિકણાં કર્મો જ્ઞાનીને પણ આડે રસ્તે લઈ જાય. અનાદિ કાળથી અનાદિ દોષથી વાસિત જીવ ગુણ પ્રાપ્ત કરે છે તે જ આશ્ચર્ય છે. સેનાનાયક મોહનીય કર્મનો નાશ થતાં શેષ કર્મ–સેનાનો નાશ થાય છે. સાવદ્ય ને નિરવદ્યનો વિવેક ન જાણનાર બોલવાને પણ યોગ્ય નથી તો તેનાથી વ્યાખ્યાન તો થઈ જ કેમ શકે? ત્રણ નિસીહિથી ક્રમે ઘરની, દહેરાની તથા પૂજાની ચિંતાનો ત્યાગ કરવો. પિંડસ્થ, પદસ્થને રૂપરહિતત્વ એટલે છદ્મસ્થ, કેવલિ તથા સિદ્ધ અવસ્થાની ભાવના ક્રમે પ્રક્ષાલપૂજા, પુષ્પવસ્ત્ર–આંગી, તથા કાઉસ્સગ્ગ વડે ભાવવી. પૃષ્ઠ ૯.

જિનદર્શન પાંચ અભિગમપૂર્વક રાજચિહ્ન ત્યજી પુરુષ ભગવાનની જમણી બાજુથી તથા સ્ત્રી ડાબી બાજુથી કરે. નવહાથનો જઘન્ય, સાઠ હાથનો ઉત્કૃષ્ટ, તથા વચ્ચેનો મધ્યમ અવગ્રહ કહેવાય. પછી વંદનવિધિ, દશપ્રકારનાં સત્ય, સોળ પ્રકારના વચન, ને સાધુની બાર પ્રતિમા વર્ણવ્યાં છે. પૃષ્ઠ ૧૦.

વેદનાની શાંતિ, વેયાવચ્ચ, ગમનાગમન, પ્રાણરક્ષા, તથા ધર્મધ્યાન અર્થે આહાર લેવો તે, ને વસ્ત્ર, પાત્ર, કંબલાદિ પરિગ્રહ નથી પણ આસક્તિ જ પરિગ્રહ છે એમ જ્ઞાત–પુત્ર શ્રીમહાવીર કહે છે. નિયાણું કર્યાવિના સહર્ષ ઉદારતાથી ગુરુ સંઘ તથા સાધર્મિકની ભક્તિ પૂજા કરવી. અપૂર્વ જિન–ચૈત્ય, જિનબિંબ–પ્રતિષ્ઠા, પ્રશસ્ત પુસ્તક, સુતીર્થ અને તીર્થંકરની પૂજામાં પોતાનું દ્રવ્ય વાપરવું. ઉત્સૂત્ર પ્રરૂપણાના દોષ વર્ણવી સૂત્રનો એક જ અક્ષર ન સદ્દહે તો તે મિથ્યાદૃષ્ટિ છે એમ કહ્યું છે. ઉત્સર્ગમાં અપવાદ સેવે તો તે વિરાધક છે ને અપવાદ પ્રાપ્ત થતાં ઉત્સર્ગ જ સેવે તો વિરાધક હોય અથવા ન હોય. તીર્થંકર, કેવલી, ચૌદપૂર્વી, ભિન્નદશપૂર્વી, સંવિગ્ન, અસંવિગ્ન, સમાનરૂપધારી (સિદ્ધપુત્રાદિ–રજોહરણ સિવાય સાધુનો વેષ ધારણ કરનાર સ્ત્રીસંગરહિત શ્રાવક), મત, દર્શન, તથા પ્રતિમા એ દશ સમ્યગ્દર્શનના ભાવની ઉત્પાદક સામગ્રી છે. અવાવરા દહેરામાં પ્રતિમા ઉપર જાળાં ભમરીના ઘર વગેરે સાધુ જુવે ને (અન્ય દૂર કરનાર ન હોય તો) પોતે સાફ ન કરે તો ચાર ગુરુ પ્રાયશ્ચિત્ત, ને કરે તો ચાર લઘુ પ્રાયશ્ચિત્ત આવે. પૃષ્ઠ ૧૧.

પૌરુષી સુધી સાધુ મોટેથી બોલે તો બાર દોષ લાગે તે વર્ણવ્યા છે. સર્વ જિનેશ્વરોએ પ્રાણિની અનુકંપા અર્થે દાનનો કદી નિષેધ કર્યો નથી. પછી જ્યાં તીર્થંકર, ચક્રવર્તી, વાસુદેવ તથા બલદેવ જન્મે તે સાડા પચીસ આર્ય દેશ વર્ણવ્યા છે. પૃષ્ઠ ૧૨.

"Aho Shrut Gyanam"

પછી ધ્યાતા અને પ્રાણાયામના પ્રકાર વર્ણવી, તેથી થતો મનનો જય વર્ણવી, મન તથા પવનની વિલીનતાથી ઇંદ્રિયશુદ્ધિ, ને તેના જયથી મોક્ષપ્રાપ્તિ કહી છે. સાધુ કયી દશાએ વર્તે છે તે નિશ્ચયથી જાણવું શક્ય નથી, તેથી દીક્ષા પર્યાયમાં જ્યેષ્ઠને વ્યવહારથી વંદન થાય છે. વ્યવહારની બલવત્તાનાં બીજાં દૃષ્ટાંતો આપ્યાં છે. સુવિહિત વસતિ, વિહાર, સ્થિતિ, ગતિ, ભાષા તથા વિનયથી માલમ પડે છે. માતાપિતા જ્યેષ્ઠભાઈ તથા રત્નાધિક પાસે કૃતિ–કર્મ ન કરાવવું. પૃષ્ઠ ૧૩.

જિનપૂજાવિધાન, તથા ફલ વર્ણવી, ગર્ભોત્પત્તિનો બાર મુહૂર્તનો સમય કહી, સ્ત્રીત્વ તથા પુરુષત્વની અવધિ કહી છે. કાચા ઘડામાં ભરેલું જલ જેમ તેનો નાશ કરે છે તેમ ઓછા પાત્રને આપેલું સિદ્ધાંતરહસ્ય તેનો નાશ કરે છે. સાત વખત શ્રીસુવિધિનાથથી શ્રીશાંતિનાથ સુધીમાં, કુલે પોણા ત્રણ પલ્યોપમ સુધી, તીર્થ-વિચ્છેદ થયો. જીવોના ઉત્પત્તિભેદે આઠ પ્રકાર છે. પૃષ્ઠ ૧૪.

ચૌદ પ્રકારે આંતરિક ગ્રંથિ કહી છે. એક જ વસતિમાં જિનકલ્પી વધારેમાં વધારે સાત હોય. આર્તધ્યાનથી તિર્યંચગતિ, રૌદ્રધ્યાનથી નરકગતિ, ધર્મધ્યાનથી દેવગતિ અને શુકલધ્યાનથી મોક્ષ થાય. આર્તધ્યાન કામરંજિત, રૌદ્ર, હિંસારંજિત, ધર્મધ્યાન ધર્મરંજિત અને શુકલધ્યાન નિરંજન છે. જ્યારે પણ પૂછાય ત્યારે એ જ ઉત્તર હોય કે એક નિગોદનો અનંતમો ભાગ સિદ્ધિ ગયો છે. પછી ચરણ-સિત્તરી તથા કરણ–સિત્તરી વર્ણવી છે. 'આગીર્ણ'ની વ્યાખ્યા કરી એકેંદ્રિય જીવોને પણ દશ સંજ્ઞા હોય છે તે દૃષ્ટાંત પૂર્વક કહી, જે છ સંજ્ઞા તેમને નથી હોતી તે પણ કહી છે. ગીતાર્થનો વિહાર તથા ગીતાર્થ મિશ્રિત વિહાર એ સિવાય ત્રીજો કોઈ જિનેશ્વરે કહ્યો નથી. યતિવરોને ઉપાશ્રયદાન વસ્ત્રાન્નપાણી શયન ને આસન આપ્યા બરોબર છે. પૃષ્ઠ ૧૫.

આશ્રયદાનનું લોકોત્તર ફળ કહી ચૌદ ગુણસ્થાનોના નામ કહ્યા છે. નવ અભવ્યનો નામોલ્લેખ કરી, શાશ્વતી પ્રતિમાનાં ઉત્સેધ અંગુલથી પાંચસે ધનુષ તથા સાત હાથ એ બે પ્રમાણ કહ્યાં છે. અનુક્રમે ત્રણ વર્ષ, પાંચ વર્ષ, તથા સાત વર્ષ સુધી સચિત્ત રહે એવાં ધાન્યો વર્ણવ્યાં છે. હાથ નચાવી અન્યને ઉપદેશ આપે પણ પોતે ન કરે તો શું ધર્મ વકરો કરવાની બજારુ વસ્તુ છે? શબ્દથી મૃગ, રૂપથી પતંગિયું, ગંધથી ભમરો, આહારથી મત્સ્ય, અને સ્પર્શેંદ્રિયથી હાથી પાશમાં પડે છે. કવચિત્ જીવને કવચિત્ કર્મ બલવાન્ થાય છે, જીવ અને કર્મને અનાદિ કાળથી વેર છે. રાઈ અને સરસવ જેટલાં પણ પારકાં છિદ્રો જુવે છે તો બેલાંફળ જેટલાં મોટાં પોતાનાં કેમ જોતો નથી? માથું ધુણવ્યું, ચિત્ત ચમક્યું, અંગ પુલકિત થયું, છતાં પણ પરગુણ ગ્રહણ કરવા ખળ પુરુષની વાણી ન જ નિકળી. એક સમયે ઉત્કૃષ્ટપણે નવલાખ પંચેંદ્રિય મનુષ્યની સ્ત્રીગર્ભે ઉત્પત્તિ હોય. સંઘ આદિના કાર્યમાટે ચક્રવર્તી સૈન્યને પણ ચૂર્ણ કરે એવી લબ્ધિ યુક્ત તે પુલાક લબ્ધિવાળો જાણવો. ઉત્તમ નર (શલાકાપુરુષ), પાંચ અનુત્તર વિમાનવાસિ દેવો, ત્રાયસ્ત્રિંશ દેવો, પૂર્વધર, ઇંદ્રો, કેવલિદીક્ષિત, શાસનદેવી, ને શાસનયક્ષ, એ આઠ અભવ્ય ન હોય. અરિહંત, સિદ્ધ, ચૈત્ય, તપ, શ્રુત, ગુરુ, સાધુ, તથા સંઘનો વિરોધી દર્શનમોહનીય કર્મ બાંધે તેથી અનંત સંસારી થાય. સાધુ કે ગૃહસ્થી જે ધર્મદાન કરે તે જ ધર્મગુરુ. આરંભ હોય તો દયા નથી, સ્ત્રીસંગ હોય તો બ્રહ્મચર્ય નથી, શંકા હોય તો સમ્યકત્વ નથી, અને દ્રવ્યગ્રહણ હોય તો પ્રવ્રજ્યા નથી. ગૃહસ્થીના વ્યાપાર પરિશ્રમથી ખિન્ન થયેલા કેટલાકને રમણી વિશ્રામસ્થાન હોય ને કેટલાકને જિનધર્મ વિશ્રામસ્થાન હોય. ઉદરભરણ સરખું જ હોવા છતાં મૂઢ અને અમૂઢના કર્મવિપાકમાં કેટલું અંતર છે: મૂઢ નરક દુઃખ પામે છે અને અમૂઢ શાશ્વત સુખ પામે છે. પૃથ્વીપર પડેલા ભૈરવ–ઝંપાપાત કરેલા, તરવારથી છેદાયલા પણ જીવે છે, પરંતુ ક્ષુધાથી પીડિત જીવતા નથી. લૌકિક પ્રેમ ઘંટારવ જેવો પહેલા ગંભીરને પર્યંતે ધીમો હોય છે. ભ્રમરની અન્યોક્તિ કહી છે. અતિહાસ્ય, અતિસંતોષ, અતિદુર્જન મનુષ્યો સાથનો સહવાસ, અતિઉદ્ભટ વેષ–પાંચે મોટાંને પણ હલકાં પાડે છે. પૃષ્ઠ ૧૬.

અરિહંત પણ એમને એમ તારવાને સમર્થ નથી; તે કુશળ માર્ગદર્શક છે, તેના દર્શાવેલ માર્ગે જાય તે તરે. દશપૂર્વ તથા અર્દ્ધનારાચ સંઘયણ શ્રીવજ્ર સ્વર્ગે જતાં વિચ્છિન્ન થયાં. ઋષભદેવ, તેમના નવાણું (ભરતવિના) પુત્રો અને ભરતના આઠ પુત્રો એમ કુલે એકસો આઠ એક જ સમયે સિદ્ધ થયા. અર્દ્ધા આમળા જેટલી પૃથ્વીકાયમાંના જીવો કબુતર જેટલું જ રૂપ ધારણ કરે તો પણ જંબુદ્વીપમાં ન માય. આ ભરતક્ષેત્રમાં કેટલાક મિથ્યાદૃષ્ટિ જીવો પણ એવા ભદ્રિક છે કે મરીને નવમે વર્ષે કેવળી થશે. પાંચે ઇન્દ્રિયોની ઉત્કૃષ્ટ વિષય–ગ્રહણ–અવધિ વર્ણવી સોળ પ્રકારના વચન ફરી કહ્યા છે. પાંચ પ્રકારના મિથ્યાત્વ કહી, કુલીન સમર્થ પુરુષે પ્રતિજ્ઞા પૂર્ણ કરવી કે યુદ્ધમાં મરવું, પણ પોતાથી ઉતરતા મનુષ્યોના ઉપાલંભ ન સહેવા એમ કહ્યું છે. જંબુદ્વીપમાં ઉત્કૃષ્ટપણે ત્રીશ ચક્રવર્તી અને જઘન્યથી ચાર હોય. ધાતકીખંડમાં તથા પુષ્કરદ્વીપમાં દરેકમાં બમણા હોય. વાસુદેવ આદિનું પણ તેમજ જાણવું. એક દિવસે જે દેવો ચ્યવે છે તેમાંથી થોડા જ મનુષ્યભવ પામે છે, તેથી કયારે મનુષ્યભવ મળશે એ ચિંતાથી દેવો દુઃખી રહે છે. ભિન્ન ભિન્ન પ્રકારના દેવોની ઉપર નીચે તથા તિર્યક્ જવાની શક્તિની મર્યાદા બતાવી છે. પૃષ્ઠ ૧૭.

પિસ્તાળીશ આગમોનું પ્રમાણ કુલે છ લાખ પિસ્તાળીશ હજાર પાંચસો ચુમાળીશ શ્લોક જેટલું છે. સ્વર્ગની વાવોમાં મત્સ્યાદિ જલચર હોતા નથી; ગ્રૈવેયકવિમાનોમાં વાવો નથી અને જળ પણ નથી. ચૈત્યદ્રવ્યના પૂજાદ્રવ્ય ને નિર્માલ્યદ્રવ્ય એમ બે પ્રકાર વર્ણવ્યા છે. પછી પચ્ચખાણનું મહત્ત્વ કહ્યું છે. વિહરમાન જિનેશ્વરો ઉત્કૃષ્ટપણે એકસો સિત્તેર તથા જઘન્યથી વીશ હોય. દશ કલ્પવૃક્ષોના નામ તથા ફળ વર્ણવ્યાં છે. પૃષ્ઠ ૧૮.

યોગપટ્ટ (સ્થવિર, ગ્લાનકે વાચનાચાર્યને) ચાર અંગુલ વિસ્તૃત સંધિરહિત શરીરવિશ્રામ અર્થે હોય તો અવષ્ટમ્ભ દોષ ન થાય. શ્રાવક પાંચ તિથિ પાળે અને અન્ય તિથિમાં તીવ્રાભિલાષ વિના વિષયસુખ ભોગવે. એક દીવામાંથી સો દીવા પ્રકટાવવામાં આવે તો ય દીવો પ્રકાશે છે, તેમ દીપ જેવા આચાર્ય અન્ય દીપ પ્રકટાવે છે. ઉત્કૃષ્ટ શ્રાવકના છ ગુણ કહી મૈથુનથી થતી જીવહિંસા બતાવી છે. શલ્યોદ્ધાર અર્થે આલોચના માટે ગીતાર્થની ગવેષણા સાતસો યોજન સુધી બાર વરસ પર્યંત કરે. અગીતાર્થ આલોચના આપતાં સ્વ તથા પરને પાડે. અગીતાર્થ જેમ વર્તે, અગીતાર્થ–નિશ્રિત જેમ વર્તે, તેમ ગચ્છને વર્તાવે અને અનંતસંસારી થાય. પછી શ્રાવકની વ્યુત્પત્તિ દ્વારા વ્યાખ્યા કરી છે. જ્ઞાનની, કેવળીની, ધર્માચાર્યની, કે સાધુની નિંદા કરનાર માયાવી કિલ્બિષિક ભાવના કરે છે. પછી માન, ઉન્માન, તથા પ્રમાણથી સુલક્ષણવાળો વર્ણવ્યો છે. પૃષ્ઠ ૧૯.

તીર્થંકરનાં જન્મ, અભિષેક, દીક્ષા, જ્ઞાન, ને નિર્વાણનાં સ્થળો, સ્વર્ગનાં ચૈત્યો, મંદર, નંદીશ્વર તથા મનુષ્ય લોકનાં ચૈત્યો, અષ્ટાપદ, ગિરિનાર, ગજાગ્રપદ, ધર્મચક્રસ્થળ (તક્ષશિલા), અહિચ્છત્રા, રથાવર્ત તથા ચમરના ઉત્પાતસ્થળને વંદન કર્યું છે. પરને

"Aho Shrut Gyanam"

પીડાકારી સત્ય તે અસત્ય જાણવું. વિહરમાન જિનની દ્વીપ પરત્વે સંખ્યા કહી છે. જેટલાં આશ્રવનાં કારણો છે તેટલાં જ ઉલટાતાં નિર્વાણ સુખ આપે છે. પરમાણુની વ્યાખ્યા કરી છે. જેને અર્દ્ધ પુદ્ગલ પરાવર્તનથી કંઈક ઓછો સંસાર રહે તે શુક્લપક્ષી, બીજા કૃષ્ણપક્ષી જાણવા. પૂર્વાભિમુખ કે ઉત્તરાભિમુખ અથવા જ્યાં જિનાદિ કે જિનચૈત્ય હોય તેની સન્મુખ રહી દીક્ષાવિધિ થાય. પૃષ્ઠ ૨૦.

હે ગૌતમ! અનાદિ કાળમાં એવા પણ આચાર્યો થયા છે અને ભવિષ્યમાં થશે કે જેનું નામ લેતાં પણ પ્રાયશ્ચિત્ત લાગે. ગર્ભમાં તથા જન્મ સમયે અત્યંત કષ્ટ હોય તે દૃષ્ટાંતપૂર્વક કહ્યું છે. બ્રહ્મચારીને આહાર ચારિત્રરૂપ ભાર વહન કરવા માટે છે જેમ ગાડાની ધરીને દીવેલ છે. ૨૪ ભગવાનના ૨૮૪૮૦૦૦ સાધુ, ૪૪૪૬૦૦૦ સાધ્વી, ૫૫૫૩૪૦૬ શ્રાવક, ૧૦૧૯૯૩૫૦ શ્રાવિકા ૨૦૦૪ યુગપ્રધાન, તેવા ૧૧૧૬૦૦૦ મુનિવરો, તથા ૧૧૧૬૦૨૦ જિનભક્ત નૃપો વાળા ચતુર્વિધ સંઘનું પ્રભાતે સ્મરણ કરવું. માગ્યું મળતું હોય તો શ્રીઋષભદેવ જેવું પાત્ર, નિર્દોષ શેરડીના રસ જેવું દાન, તથા શ્રેયાંસ જેવો ભાવ થાઓ. દશ પ્રકારનું વૈયાવચ્ચ કહ્યું છે. સૂર્યોદય પહેલાં મુહપત્તિ, ચોલપટ્ટો, કલ્પત્રિક, બે નિસજ્જા, રજોહરણ, સંથારો તથા ઉત્તરપટ એ દશ પડિલેહવાં. પૃષ્ઠ ૨૧.

પડિલેહણા સાવધાનતાથી ન કરે તો છ યે કાયનો વિરાધક જાણવો. ત્રણ ગુપ્તિ અકુશલની નિવૃત્તિ તથા કુશલની પ્રવૃત્તિરૂપ છે. લટ્ઠી, વિલટ્ઠી, દંડ, વિદંડ તથા નાલીનાં પ્રમાણ તથા કાર્ય કહ્યાં છે. ઉપશમશ્રેણિ એક ભવમાં બે વખત તથા સમગ્ર ભવોમાં ચાર વખત પામે; ક્ષપકશ્રેણિ એક જ વખત પામે. વાસુદેવનો પુત્ર હોય તો પણ વૃદ્ધને દીક્ષા ન દેવી, કારણ કે તે ઉચ્ચાસન ઇચ્છે, વિનય ન કરે, ને ગર્વ ધરે. કેવલી, મનઃપર્યવજ્ઞાની, ચૌદપૂર્વી, દશપૂર્વી તથા કંઈક ન્યૂન દશપૂર્વીને નિયમથી સમ્યકત્વ હોય; બીજાને હોય કે ન હોય; અવધિજ્ઞાની ને મતિજ્ઞાનીને વિપર્યાસથી મિથ્યાત્વ હોય. બે પ્રકારના ગ્લાનપણામાં, નિમંત્રણ, દ્રવ્યની દુર્લભતા, અશિવ, દુર્ભિક્ષ, રાજદ્વેષ, ને ભયને કારણે શય્યાતરપિંડ પણ લેવો. પૃષ્ઠ ૨૨.

રાત્રે પ્રથમ પ્રહર સર્વ જાગે, મુનિવૃષભો બન્ને પ્રહર જાગે, ત્રીજે પ્રહર ગુરુ જાગે, ચોથે પ્રહર સર્વ જાગે, ગુરુ સુવે. આલોચનાના પરિણામવાળો ગુરુ સમીપ જતાં વચ્ચે જ કાળ કરે તો ય આરાધક થાય. લૌકિક નાટકમાં ગાનાર તથા સાજિંદાની ઉત્તમ, મધ્યમ તથા લઘુ મંડળી કહી છે. બાર ચક્રવર્તી કયારે થયા તે તથા તેમની ગતિ કહી, નવનારદનો નામોલ્લેખ કરી, ગુરુપ્રશંસા કરી છે. સાધુ નવ પ્રકારે શુદ્ધ અહિંસા પાળે. જૈન, મીમાંસક, બૌદ્ધ, નૈયાયિક, વૈશેષિક તથા સાંખ્ય એ છ દર્શન કહી, ૧૦ પચ્ચખાણ, ૪ અભિગ્રહ, ૭ શિક્ષા, ૧૨ પ્રકારે તપ, ૧૧ પડિમા, ૧૨ ભાવના, ૧૪ ક્ષેત્ર, ૪ પ્રકારે ધર્મ તથા ૧૭ ભેદે પૂજા એમ ગૃહસ્થીની એકાણું બાબત કહી છે. સદાકાળ સંઘની ભક્તિ તથા તીર્થની ઉન્નતિ કરનાર અવિરતિ સમ્યગ્ દૃષ્ટિ શ્રાવક પણ પ્રભાવક હોય; ગુણી, સદાચારી, બારવ્રતધારી તે મધ્યમ; ને મદ્ય માંસ ને સ્થૂળ હિંસા ને ત્યજનાર નવકાર માત્રધારક તે જઘન્ય શ્રાવક હોય. પૃષ્ઠ ૨૩.

ઉત્કૃષ્ટપણે શ્રાવક સચિત્તાહાર ત્યજે એકાસણું કરે ને બ્રહ્મચારી હોય (રોજ એકાસણું ન કરી શકે તો દિવસના આઠમા ભાગમાં જમે). જિનભવન, જિનબિંબ, જિનભક્ત રાજા, જૈનમંત્રી તથા અતિશયવાળા આચાર્ય એ પાંચ જિનમતમાં ઉદ્યોતકારક કહ્યાં છે. ૧૭ પ્રકારનાં મરણ તથા વિવિધ કર્મથી વિવિધ પરીસહો થાય તે કહી, સિદ્ધાવગાહના વર્ણવી છે. વ્યવહારરાશિમાંથી જેટલા જીવો સિદ્ધ થાય તેટલા અનાદિ વનસ્પતિમાંથી વ્યવહારરાશિમાં આવે. અભવ્ય, સિદ્ધ, ભવ્ય તથા જાતિભવ્ય ચારે અનંત છે, છતાં ઉત્તરોત્તર અનંતગણા છે. નિહ્નવો કહી, મોતી હાથીના ગંડસ્થળ, શંખ, મત્સ્ય, વાંસ, વરાહની દાઢ, સર્પશિર, મેઘ તથા છીપ એ આઠ સ્થળે થાય તે કહ્યું છે. સંજમઅર્થીએ સારણા, વારણા, પડિચોયણા વિનાના ગચ્છને ત્યજવો. નારકીને સાતા, ઉપપાત, દેવકર્મ, અધ્યવસાય તથા કર્માનુભાવથી હોય. તેનો ઉત્કૃષ્ટ ઉત્પાત પાંચસો જોજન હોય. પૃષ્ઠ ૨૪.

ઔષધના યોગે લોઢું સુવર્ણપણાને પામે છે, તેમ આત્મધ્યાનના યોગે આત્મા પરમાત્મત્વ પામે છે. મલોત્સર્ગ કરતાં ધ્યાનમાં રાખવાની બાબતો કહી છે. અભવ્ય ને જાતિભવ્ય સિદ્ધિ પામશે નહિ. ગીતાર્થો થોડા દોષવાળું ને બહુ ગુણવાળું જે આચરણું કાર્યને અનુલક્ષી કરે તેને સર્વે પ્રમાણભૂત ગણે. રોજનું એક માણું ગણતાં સો વર્ષ જીવનારને છપ્પન મૂડા તથા ચાલીશ સેઈ (માપ) ધાન્ય જોઇયે. તારા, ચંદ્ર, ને સૂર્ય ઉત્તરોત્તર બળવાન્ છે; સૂર્યબળ હોય તો નઠતા ગ્રહો પણ સારા થાય. સુદ એકમે ચંદ્ર શુભ હોય તો તે પક્ષ શુભ જાણવો, કૃષ્ણપક્ષનાં ઉલટું સમજવું. યાત્રા, જન્મ, તથા વિવાહમાં ચંદ્રની પ્રત્યેક રાશિની બાર અવસ્થા નામ પ્રમાણે ફળ આપે. પૃષ્ઠ ૨૫.

સમ્યક્ત્વ સમયની કર્મસ્થિતિમાંથી પલ્યોપમ પૃથક્ત્વ-ક્ષીણ થતાં દેશવિરતિ, ને સંખ્યાતા સાગરોપમ ક્ષીણ થતાં સર્વવિરતિ ચારિત્ર કર્મના ક્ષયોપશમે હોય. સંથારો શ્રેષ્ઠ મંગલ છે. સંથારો કરનાર એક જ સમયમાં અસંખ્ય લાખો ક્રોડ ભવોમાં બાંધેલું અશુભ કર્મ હણે છે. ભાવજિનોને પણ સર્વે વંદના કરે, તોપણ ચૈત્યવંદન જિનબિંબ સામે કરે. જિનબિંબના અભાવે સ્થાપના ગુરુની સાક્ષિએ પણ કરે. આ પણ ચૈત્યવંદન છે, કારણ કે સ્થાપનામાં પરમેષ્ઠિની પણ સ્થાપના હોય છે. અથવા ગમે ત્યાં જિનબિંબ કલ્પી પંડિતો વંદના કરે. સામાન્યતઃ શ્રુત એકલું (અર્થ વિના) પ્રમાણ કે અપ્રમાણ નથી. આંધળો જેમ પાંગળાને લઈ જાય, તેમ શ્રુત અર્થને ધારણ કરે છે અને માર્ગ બતાવે છે. પાંચ સ્થાવરને મોહસંજ્ઞા, બેઇંદ્રિય આદિને હેતુસંજ્ઞા, દેવનારકી ને ગર્ભોદ્ભવ જીવોને કાલિકીસંજ્ઞા હોય. છદ્મસ્થ સમ્યગ્દૃષ્ટિ ને શ્રુતજ્ઞાનસંજ્ઞા હોય અને કેવળી મતિના વ્યાપાર વિનાના સંજ્ઞારહિત હોય. પૃષ્ઠ ૨૬.

તીર્થંકર ભગવાનનું આગમન સાંભળી ચક્રવર્તી સાડા બાર ક્રોડ ને સાડા બાર લાખ સુવર્ણનું પ્રીતિદાન કરે, વાસુદેવ તેટલું જ રૂપાનું કરે, હજારો મંડલિકો લાખોનું કરે ને અન્ય ઇભ્ય શ્રેષ્ઠિઓ સ્વશક્તિ ને ભક્તિ અનુસાર કરે. એક જ શુદ્ધ નિર્દોષ આયંબિલ પિસ્તાળીશ નવકાર સહિત હોય તો ઉપવાસ બરોબર થાય, નહિ તો બે આયંબિલ ઉપવાસ બરોબર થાય. વર્ષાવાસ આદિમાં શ્રેષ્ઠ દાન શ્રદ્ધાવાળાં શ્રાવક કુલો સ્થાપે, ને તેમાંના એક કુલમાં આચાર્ય, ગ્લાન ને પ્રાહુણા અર્થે ગીતાર્થ સિવાય અન્ય સાધુ ન જાય. ચંદ્ર સૂર્ય નક્ષત્રો ને મહાગ્રહોના ચાર-ગતિ વિશેષથી મનુષ્યોને સુખદુઃખ થાય છે. ઉપાશ્રયનું દ્વાર રાત્રે બંધ કરે, કારણ કે નહિ તો વિરોધી, ચોર, શિકારી પ્રાણિ, ભામટા, ગાય, કુતરા, ગાંડા, સર્પ, પક્ષિ, સ્થાનહીન ગૃહસ્થી ઘુસી જાય કે અસહ્ય ટાઢ પડે; સર્પ, શિકારી પ્રાણિ કે વિરોધી ઘુસી જાય તો ગુરુ પ્રાયશ્ચિત્ત ને બીજાં કારણે ચાર લઘુપ્રાયશ્ચિત્ત (ઉપધિ-ચોર ઘુસે તો લઘુ પણ મનુષ્યાપહારક ઘુસે તો ગુરુ) કહ્યાં છે. સંયમ વિરાધના ને આત્મ વિરાધના-એમ આણા વિરાધના બે પ્રકારે હોય. પૃષ્ઠ ૨૭.

"Aho Shrut Gyanam"

શ્રાવકે યથાશક્તિ ગુણહીન સાધુને ઉચિત દાન ને ગુણવાનને ભક્તિપૂર્વક દાન દેવું. પછી સમવસરણમાં વિવિધ પર્ષદા કેમ બેસે ને અન્યોન્ય વિનય જાળવે તે કહ્યું છે. નંદીશ્વર દ્વીપના અંજનાદિ પર્વતપરના ૫૨ તથા ઇંદ્રની રાજધાનીઓનાં ૩૨ મળી ૮૪ ચૈત્યને વંદના કરી છે. અગિયાર અંગો કાલિકશ્રુત છે પણ દૃષ્ટિવાદમાં વિકલ્પ છે. કાલિકશ્રુતનો અધ્યયનકાળ દિવસ તથા રાત્રિના પહેલા ને છેલ્લા પ્રહર છે. ક્ષેત્રાદિક કર્મના ઉદયનું કારણ છે તે લક્ષમાં રાખી શુભ ક્ષેત્રમાં શુભ દિશા સન્મુખ શુભ તિથિ નક્ષત્ર મુહૂર્તમાં દીક્ષા વ્રતારોપણ આદિ કરવાં. પ્રભાસ્વ (સાધારણ દ્રવ્ય), બ્રહ્મહત્યા, દરિદ્રનું ધન, ગુરુપત્ની, દેવદ્રવ્ય એ સ્વર્ગમાં રહેલાને પણ પાડે. પૃષ્ઠ ૨૮.

આચાર્ય, ગચ્છ, કુલ, ગણ, સંઘ કે ચૈત્યનો વિનાશ ઉપસ્થિત થતાં સ્વવીર્યાનુસાર પરાક્રમ કરે ને નાશ અટકાવે; તેમ કરતાં દોષ લાગે તેની ગુરુસમક્ષ આલોચના કરી મિચ્છામિ દુક્કડ માત્ર દેવાથી શુદ્ધ થાય, કારણ કે મોટી નિર્જરા થાય છે. જિનેશ્વરનાં ચમર છત્ર કલશ આદિ ઉપકરણો નકરો આપ્યા વિના જે વાપરે તે દુઃખી થાય. વંદનથી નીચ ગોત્ર કર્મ ખપાવે, ઉચ્ચ ગોત્ર કર્મ બાંધે ને કર્મગ્રંથિ ઢીલી કરે. ફિટ્ટા, છોભ, ને દ્વાદશાવર્ત એ ગુરુવંદનના ત્રણે પ્રકાર વર્ણવ્યા છે. બીજું ચૈત્ય ન હોય તો નિશ્રાકૃત ચૈત્યમાં પણ સમવસરણ થાય. મોક્ષ નક્કી હોવા છતાં તીર્થંકર ભગવાન્ પણ બલ વીર્ય ગોપવ્યા વિના સર્વત્ર સર્વથા ઉદ્યુક્ત રહે છે. કેવલી ને છદ્મસ્થની પડિલેહણાનો ભેદ દેખાડ્યો છે. પૃષ્ઠ ૨૯.

સંઘાટક (સિંઘોડા)નો ગુચ્છો અનેક જીવવાળો ને પત્ર પ્રત્યેક જીવવાળા જાણવા, ને ફળમાં બન્ને પ્રકારે જીવો હોય. મધ, માખણ, સંઘાટક, ગોરસથી થયેલ વિદલ જ્ઞાત અનંતકાય, અજ્ઞાત ફળ, વેંગણ ને પાંચ ઉમરા ન ખાય. ભાવતીર્થ વિવિધ રીતે સમજાવ્યું છે. ઉપશમશ્રેણિઆરૂઢને જે સમ્યકત્વ હોય તે ઉપશમિક સમ્યકત્વ, તેનો સમય અંતર્મુહૂર્તનો છે. સંરંભ, સમારંભ ને આરંભ તે અનુક્રમે સંકલ્પ, સંતાપ, ને પૃથિવ્યાદિના ઉપમર્દન જાણવા. શ્રુતજ્ઞાનમાં અભક્તિ, લોકવિરુદ્ધતા, પ્રમત્તની છલના, ને વિદ્યાસાધનમાં વૈગુણ્ય ન કરવાં. દાન, પૂજા, હોમ ને સ્વાધ્યાય ખણ્ડિત, સાંધેલા, છિન્ન, રાતા કે રૌદ્ર વસ્ત્ર પહેરીને કરવાથી નિષ્ફળ થાય છે. પછી દશ પ્રકારના પ્રાયશ્ચિત્ત કહ્યા છે ને વંદનના આઠ પ્રસંગ કહ્યા છે. પૃષ્ઠ ૩૦.

સામાયિકમાં શ્રાવક, ન ચાલે તો, એક કે બે અધિક વસ્ત્ર-પ્રાવરણ રાખે, છતાં ન ચાલે તો ત્રણ રાખે. સામાયિકમાં શ્રાવિકા કટિવસ્ત્ર–ચણિયો, કંચુક તથા ઉત્તરીય (ઉપર ઓઢવાનું) એમ ત્રણ પહેરે, અપવાદે બીજાં ત્રણ પહેરે, પરંતુ પ્રતિક્રમણ સમયે ત્રણ જ રાખે, વધારેનો ત્યાગ કરે. જે સળી વિના મુખશુદ્ધિ ન કરી શકે તે કડવા કે તુરા સ્વાદની સળી લે, તેથી વ્રતાદિનો ભંગ થતો નથી. અજ્ઞાની જે કર્મ ઘણા કરોડો વર્ષે ખપાવે તે ત્રણ ગુપ્તિયુક્ત જ્ઞાની ઉચ્છ્વાસમાત્રમાં ખપાવે. સમવસરણમાં, જિનભવનમાં, શેરડીના વનમાં, અશ્વત્થાદિ ક્ષીર વૃક્ષના વનખણ્ડમાં, ગંભીર નાદવાળા કે દક્ષિણાવર્ત જળવાળા ભાગમાં દીક્ષા આપવી. તપ એવું કરવું કે જેથી મનના પરિણામ અશુભ ન થાય, જેથી ઇંદ્રિય હાનિ કે યોગનો હ્રાસ ન થાય. પૃષ્ઠ ૩૧.

જિનેશ્વરોએ (એકાંતે) કશાની અનુજ્ઞા કે કશાનો નિષેધ કર્યો નથી, તેમની આજ્ઞા કાર્યમાં સત્ય હોય તે જ કરવાની છે. જે દીક્ષા માટે અસમર્થ હોય, બાલક, વૃદ્ધ, કે રોગી હોય તે નિર્જરા ઇચ્છે તો આવશ્યકયુક્ત રહે. દર્શનથી ભ્રષ્ટ છતાં ચારિત્રયુક્તનો સામાન્યતઃ ગ્રૈવેયક વિમાન સુધી ઉત્પાત થાય. ઉદ્દિષ્ટ ભોજન કરે, છ કાયનું મર્દન કરે, દેવના મિસે ઘર કરે, પ્રત્યક્ષ સચિત્ત જલ પીએ તેને સાધુ કેમ કહેવાય? સુવ્રતી વજ્રસ્વામિએ દ્રવ્ય–સ્તવ (પુષ્પાદિપૂજન) કરાવવાનું પણ વિધિ તરીકે કહ્યું છે, ને વાચકના ગ્રંથોમાં પણ આ સંબંધી દેશના છે. નિર્દિષ્ટ ગુણો રહિત હોવા છતાં જે ગણ સોંપે કે પ્રવર્તિની પદ આપે તથા જે લે તેને આણા–ભંગનો દોષ થાય. ગણધરપદ શ્રીગૌતમે ને પ્રવર્તિનીપદ આર્યા ચંદનાએ ધારણ કર્યા હતાં તે છતાં જાણીને અપાત્રને તે પદો જે અર્પે તે, તથા જે લે તે, તથા ધારણ કરીને વિશુદ્ધ ભાવથી પદને સર્વથા યોગ્ય ન થાય તે મહાપાપી–વિરાધક છે. આવસ્સિય, નિસીહિય, ને ઉપસંપદ સિવાયની સાતે સામાચારી પ્રયોજનના અભાવે જિનકલ્પીને હોતી નથી. પૃષ્ઠ ૩૨.

જિનકલ્પી છ ગૃહ–પંક્તિ કરી એકેકમાં પ્રતિદિન ગોચરી માટે વિચરે, તથા એક વસતિમાં સાતથી વધુ ન રહે, ને પરસ્પર સંભાષણ ન કરે. ગુણી સાધુના ગુણોની સુવર્ણના ગુણો સાથે સરખામણી કરી છે. જિનકલ્પીને બેથી માંડી બાર પ્રકારની, સ્થવિરને ચૌદ પ્રકારની, ને આર્યાને પચ્ચીસ પ્રકારની ઉપધિ હોય તે દરેક વર્ણવી છે. ૪૦ અંગુલ પરિધિવાળું ભાજન મધ્યમ ને તેથી ઓછું વધતું જઘન્ય તથા ઉત્કૃષ્ટ હોય. પૃષ્ઠ ૩૩.

પાત્રસ્થાપન, ગોચ્છક, તથા પ્રતિલેખનીનું પ્રમાણ એક વેંત ને ચાર અંગુલ કહી, વિવિધ ઋતુ પરત્વે પટલની સંખ્યા કહી, પ્રમાણ બતાવી રજસ્ત્રાણ, ત્રણ કલ્પ (બે સુતરના ને એક ઉનનો), રજોહરણ (૨૪ અંગુલ દંડ ને આઠ અંગુલ દસિયા મળી ૩૨ અંગુલ), મુહપત્તી, માત્રક, ચોલપટ્ટો ને કમઢના પ્રમાણ વર્ણવી, પીઠક, નિસજ્જા, દંડક, પ્રમાર્જની, લોહઘટ્ટક, ડગલ, પિપ્પલક (અસ્તરો), સોય, નેરણિ તથા કાનકોરણી ને દાંતકોરણીનો ઉલ્લેખ કર્યો છે. જેમ પટનું કારણ તંતુ, ને તંતુનું રૂ છે, તેમ મોક્ષનું કારણ જ્ઞાનદર્શન ને ચારિત્ર અને એ ત્રણેનું કારણ આહાર છે. નિશ્ચય નયના મતે ચારિત્રઘાતથી જ્ઞાન ને દર્શનનો પણ નાશ થાય છે, જ્યારે વ્યવહાર નયના મતે ચારિત્રઘાતથી જ્ઞાનદર્શનનો નાશ વિકલ્પે થાય. આજ્ઞામાં રહેવાથી જ ચારિત્ર હોય તેથી આણા ભંગથી સર્વનો ભંગ થાય છે. વાસ્તવિક કથન ન કરનાર મિથ્યાદૃષ્ટિ અન્યને પણ શંકા ઉપજાવી મિથ્યાત્વને જ વધારે છે. પૃષ્ઠ ૩૪.

ઇંધણ, અગ્નિ, અન્નગંધ, ધૂમાડો, ને વરાળના અંશોથી થતી અશુદ્ધિ ટાળી શકાય એવી નથી. અધ્યાત્મનું મહત્વ કહ્યું છે. ભાવિ ચોવીસીના બારમા 'અમમ' તીર્થંકરની શીઘ્ર સિદ્ધિ વર્ણવતાં તે નરકમાંથી મનુષ્યભવ પામી, પાંચમાં દેવલોકે ઉત્પન્ન થઈ, ત્યાંથી ચ્યવી તીર્થંકરપણે જન્મી મોક્ષે જશે–એ કહ્યું છે. વાદી, ક્ષમાશ્રમણ, દિવાકર, ને વાચકનો એક જ અર્થ છે. રુચિભેદે સમ્યકત્વના દશ ભેદ વર્ણવ્યા છે. દર્શન વિના ચારિત્ર નથી; ને દર્શન હોય તોપણ ચારિત્રની ભજના જાણવી. દર્શન ને ચારિત્ર સાથે જ થાય, અથવા પહેલું દર્શન ને પછી ચારિત્ર હોય. સમ્યગ્દર્શન વિના જ્ઞાન નથી, જ્ઞાન વિના ચારિત્ર નથી, ચારિત્ર વિના કર્મ–મોક્ષ નથી, ને કર્મક્ષય વિના નિર્વાણ નથી. દિવસ કે રાત્રિના કયા પ્રહરે વિવિધ તીર્થંકરો મોક્ષ પામ્યા તે કહ્યું છે. અસંયમના સત્તર ભેદ ને ભારણ્ડપક્ષિનું સ્વરૂપ વર્ણવ્યાં છે. પૃષ્ઠ ૩૫.

"Aho Shrut Gyanam"

સ્વર્ગમાંથી ચ્યવી જીવ પૃથ્વીકાય, અપ્કાય, વનસ્પતિ, ગર્ભજ પર્યાપ્ત સંખ્યાતા જીવસ્થાનકોમાં ઉત્પન્ન થાય તે કહ્યું છે. પછી મહાભારતમાંથી મદ્ય માંસભક્ષણ, રાત્રિભોજન કંદ ને મૂળાના ભક્ષણનો નિષેધ વર્ણવ્યો છે. પછી માનવી સ્મૃતિ (માનવ-ધર્મસંહિતા ?)માંથી તુમ્બડી, વેંગણ, કલિંગર, મૂળા તેમજ કાંદા, લસણ, ગાજર, સુરણ, મત્સ્ય, માંસ આદિનો નિષેધ વર્ણવ્યો છે. પદ્મપુરાણમાંથી રાત્રે ભોજન તથા જલપાનનો નિષેધ, ને મહાભારતમાંથી મધુપાનનો નિષેધ વર્ણવ્યો છે. પછી અન્નદાનનો મહિમા કહ્યો છે. પૃષ્ઠ ૩૬.

અણુવ્રતીથી મહાવ્રતી ને તેથી તત્ત્વજ્ઞાની ચઢે છે. તત્ત્વજ્ઞાની જેવું પાત્ર થયું નથી ને થશે નહિ. પછી શત્રુંજય તીર્થનું ઉત્કૃષ્ટ મહાત્મ્ય વર્ણવ્યું છે. દહેરામાં આસાતના ન કરવી તે કહી, મનુષ્ય જન્મની દુર્લભતા, દશ દૃષ્ટાંતે કહી છે. ભદ્રહાથીનું મૂલ્ય સવા લાખ, મંદ હાથીનું અર્ધું, મૃગ હાથીનું ચોથા ભાગનું ને મિશ્ર જાતિના હાથીનું આઠમા ભાગનું કહ્યું છે. અતિવૃષ્ટિ, અનાવૃષ્ટિ, ઉંદર, તીડ, પોપટ, સ્વસૈન્ય અને પરસૈન્ય એ સાત ઇતિઓ કહી છે. ગણીને, તોળીને, ભરીને તથા માપીને એમ ચાર રીતે વિવિધ વસ્તુનું પ્રમાણ થાય છે. બેઇંદ્રિયથી અનુત્તરવિમાનના દેવો સુધી ઉત્તરોત્તર શુદ્ધ જ્ઞાન જાણવું–ને સર્વથા શુદ્ધ પૂર્વધરનું જાણવું. શ્રીઋષભદેવને પ્રથમ ભિક્ષા વર્ષે મળી બાકીના તીર્થંકરોને બીજે જ દિવસે મળી. મિથ્યાત્વ, સાસ્વાદન કે અવિરતિ સમ્યક્ત્વ ગુણસ્થાને જ પરલોકગમન થાય. પ્રત્યેક ગુણસ્થાનનો સમય કહી, દશ નિર્યુક્તિનાં નામ કહ્યાં છે. પૃષ્ઠ ૩૭.

શ્રીમહાવીર તથા શ્રીઋષભદેવનો પ્રમાદકાલ અંતર્મુહૂર્ત તથા અહોરાત્રિ; ઉપસર્ગો શ્રીપાર્શ્વનાથ તથા શ્રીમહાવીરને જ થયા બીજાને નહિ. શ્રીઋષભદેવ, શ્રીનેમિનાથ, શ્રીપાર્શ્વનાથ, તથા શ્રીમહાવીર આર્ય તેમ જ અનાર્ય, દેશોમાં વિચર્યા, શેષ તીર્થંકરો માત્ર આર્ય દેશમાં જ વિચર્યા. પછી ૨૪ જિનતપ, જિનદીક્ષા–વ્રતપરિવાર, જિનવ્રતવેલા, દેવદૂષ્ય તથા તેનો કાળ, જિન-જ્ઞાનતપ, જિનમોક્ષપરિવાર, યુગાન્તકર ભૂમિ તથા પર્યાયાન્તકર ભૂમિ વર્ણવી વસુધારા ઉત્કૃષ્ટી સાડા બાર કરોડ સુવર્ણની તથા જઘન્ય સાડા બાર લાખ સુવર્ણની કહી છે. પૃષ્ઠ ૩૮.

આહાર પુરુષનો બત્રીસ કોળિયાનો ને સ્ત્રીનો અઠાવીસ કોળિયાનો કહી, કોળિયાનું પ્રમાણ બતાવી, આચાર્ય, ઉપાધ્યાય, પ્રવર્તક, સ્થવિર, તથા ગણાધિપતિના આવશ્યક ગુણો કહી, અઢાર ભેદે બ્રહ્મચર્ય કહી, રસાલુ નામક રાજાને યોગ્ય પાક બે પલ ઘી, એક પલ મધ, અર્ધું આઢક દહિં, વીસ મરી, તથા દશ પલ શાકર અથવા ગોળથી થાય છે તે કહ્યું છે. દિવસના ત્રણ પહોર પછી અકાલ ગમનને લઈ ચારિત્ર દોષની સંભાવનાના કારણે, સાધ્વી તથા શ્રાવિકા સમવસરણમાં ન જાય. પૃષ્ઠ ૩૯.

પછી નવ પ્રકારે ચૈત્યવંદના વર્ણવી છે. મતિજ્ઞાન ને શ્રુતજ્ઞાન પરોક્ષ છે તથા બાકીના જ્ઞાન આત્મપ્રત્યક્ષ છે. મતિજ્ઞાની, શ્રુતજ્ઞાની તથા કેવલી છ દ્રવ્ય જાણે, અવધિજ્ઞાની માત્ર પુદ્ગલદ્રવ્ય જાણે, ને મનઃપર્યવજ્ઞાની મનચિંતવ્યા પર્યાય પણ જાણે એ કહી, મતિ, શ્રુત, અવધિ તથા મનઃપર્યવના ભેદોપભેદ વર્ણવી, કેવળજ્ઞાનના એકલું, અસહાય, અસાધારણ, અનંત, શેષરહિત ને કેવળ એમ છ અર્થ કહ્યા છે. પૃષ્ઠ ૪૦.

કેરીની જેમ સ્વાભાવિકરીતે અથવા ઉપચારથી કર્મની નિર્જરા અકામને સકામ બે પ્રકારે હોય. શ્રીજિનદત્તસૂરિએ કહ્યું છે કે ધાર્મિક પુરુષ ધર્મરક્ષાર્થે યુદ્ધ કરતાં અન્યને મારે તો પણ તેને ધર્મ થાય ને ક્રમે મોક્ષ પામે. મૂલ્યથી પુષ્પાદિ મળતા હોય તો વાડીકુવા ન કરાવે ને સ્થાવર મિલકત વસાવી ને દેવદ્રવ્યનો સંગ્રહ કરી ન વધારે. મરણાસન્ન પુરુષ ઋણ ફેડવા કે ભક્તિથી ઘર હાટ આપે તો લે. જિનચૈત્યમાં હાસ્ય ક્રીડા હોડ ત્યજે, રાત્રે દહેરામાં સ્નાન, નંદિ તથા પ્રતિષ્ઠા ન કરે તથા સ્ત્રીને ન આવવા દે. નિર્દિષ્ટ કારણથી દીક્ષાનો પ્રતિબંધ અતિ અયોગ્ય માટે કહ્યો છે, છતાં દીક્ષાથી ભ્રષ્ટ થનારને પણ પૂર્વે આપેલી દીક્ષા મુક્તિના બીજરૂપ છે. સાધુએ પ્રચ્છન્ન ભોજન કરવું, જેથી કર્મબંધ ન થાય. દીક્ષા માટે જઘન્યથી વય પ્રમાણ આઠ વર્ષનું ને ઉત્કૃષ્ટપણે આરોગ્ય હોય ત્યાં સુધીની વય કહી છે. તેથી ઓછી વયનાં પરાભવ પાત્ર થાય છે, ચારિત્રનો ભાવ પણ પ્રાયઃ ત્યારે પરિપાક પામતો નથી. પૃષ્ઠ ૪૧.

કર્મના ક્ષયોપશમથી થતાં ચારિત્ર્ય ને બાલકપણાને વિરોધ નથી તેથી બાલદીક્ષિતને એકાંતે અયોગ્ય કહેવા અસદ્ગ્રહ છે. દીક્ષામાં ચૌદસ, પુનમ, આઠમ, નોમ, છઠ, ચોથ, તથા બારસ વર્જવી. ત્રણ ઉત્તરા તથા રોહિણીમાં દીક્ષા, અનુજ્ઞા તથા મહાવ્રત આપે. દીક્ષામાં ત્યાજ્ય નક્ષત્રો ને તેથી થતાં અનિષ્ટ ફળ કહ્યાં છે. દીક્ષા આપતાં ચૈત્યવંદન કરે, રજોહરણ આપી, લોચ કરી, સામાયિક–કાઉસ્સગ્ગ કરી, સામાયિક ત્રણ વખત ઉચ્ચરે ને ત્રણ પ્રદક્ષિણા દે. શિષ્યને ગુરુ પોતાની ડાબી બાજુએ બેસાડી દરેક વ્રત ત્રણ વખત ઉચ્ચરી આપે. પઞ્ચવસ્તુક પ્રમાણે ચૈત્યવંદન ને વર્ધમાનસ્તુતિ કરે–એવો પાઠ છે. ચૌદ નિયમ કહ્યા છે. પૃષ્ઠ ૪૨.

તલથી માંડી પૃથ્વીનું કોષ્ટક કહ્યું છે. જાતિ–સ્મરણથી પૂર્વના એકથી નવભવ જાણે. સાત નિહ્નવો ને દિગંબરની ઉત્પત્તિની સાલો તથા સ્થળો આપ્યાં છે. પૃષ્ઠ ૪૩.

આધાકર્મે પરિણતિવાળો શુદ્ધ ભોજન કરે તો ય કર્મ બાંધેને શુદ્ધ આહારની શોધ કરનાર આધાકર્મી આહાર લે તો પણ શુદ્ધ હોય. શ્રીપાદલિપ્તાચાર્યની માંત્રિક શક્તિ દેખાડનારી ગાથા છે કે તેઓ જાનુ પર જેમ જેમ તર્જની ભમાડે–ફેરવે છે તેમ તેમ મુરુંડ રાજાની મસ્તક વેદના નાશ પામે છે. દુષ્ટમતિવાળા કામીઓ કર્મ બાંધે ને વિરક્ત ન બાંધે તે લીલા ને સૂકા બે માટીના ગોળામાંથી લીલો ભીંતે ચોંટે ને સૂકો ન ચોંટે તે પરથી કહ્યું છે. ચક્રવર્તીના નવનિધાનોનો નામોલ્લેખ કર્યો છે ને તેની મંજુષાનું પ્રમાણ કહ્યું છે. જો કે (ચ્યવનકાળ સમીપ આવતાં) દેવોના તેજનો હ્રાસ થાય છે છતાં તેમની રૂપસંપદા અસંખ્ય ગણી હોય છે. પૃષ્ઠ ૪૪.

તીર્થંકરના જન્મમહોત્સવ આદિ પ્રસંગે ભવનવાસિ શંખનાદથી, વ્યંતરો પડહના નાદથી, જ્યોતિષી સિંહનાદથી, ને કલ્પાધિક દેવો ઘંટાનાદથી સસંભ્રમ ઈહી સર્વ ઋદ્ધિથી મનુષ્યક્ષેત્રમાં જાય છે. શ્રીસીમંધરસ્વામિના જન્મ દીક્ષા ને સિદ્ધિના સમય કહ્યા છે. મંત્રીના ત્રીશ ગુણ કહી, ગુરુનું મહત્ત્વ દર્શાવી, યજ્ઞમાં પશુ–હિંસા યુક્તિ–સંગત નથી તે ઉપહાસપૂર્વક કહ્યું

"Aho Shrut Gyanam"

છે. કામરાગ ને સ્નેહરાગ કરતાં દૃષ્ટિરાગ દૂર કરવો અતિ દુષ્કર છે. નવીન જિનમંદિર કરતાં જીર્ણોદ્ધારમાં આઠગણું પુણ્ય થાય. માટી, પાષાણુ, કાષ્ઠ, ચાંદી, સોનું, રત્ન, મણિ કે ચન્દનનું જિનબિંબ કરાવનાર મનુષ્યલોકના તથા સ્વર્ગના સુખભોગવે. શ્રીમહાવીરનો મહાન્ અભિગ્રહ જે શ્રીચંદનાએ પૂર્યો તે વર્ણવ્યો છે. પૃષ્ઠ ૪૫.

અત્યંત પ્રતિકૂળ સંજોગોમાં શ્રીસ્થૂલભદ્રે કામને જિત્યો તેની પ્રશંસા કરી છે. જિનપૂજામાં ત્યાજ્ય પુષ્પ ફૂલ ને પત્ર બતાવ્યાં છે. પ્રસ્થાનસમયના શુભ શકુન કહ્યા છે. વાતુડિયો, પલ્લવગ્રાહી, ઉંઘણસી, અતિચંચલ ને વચ્ચેથી ઉઠી જનાર વ્યાખ્યાન-ને અયોગ્ય છે. વિદ્યાને સર્વ ધનમાં પ્રધાન કહી આમ્નાય દુર્લભ કહ્યા છે. અસારનો આડમ્બર વિશેષ હોય, જેમ સુવર્ણના ધ્વનિ કરતાં કાંસાનો અધિક હોય. જુથની પ્રશંસા કરી, મૂર્ખતાનું ઔષધ નથી એમ કહ્યું છે. સાગરતીરે કુવાનું જળ શોધનાર મુસાફરની અન્યોક્તિ કહી છે. સંદેશો, લેખ, ને મીલન ઉત્તરોત્તર કિંમતી છે, પણ સ્વેષ્ટસંગમ થતાં કંઈ કિંમત રહેતી નથી. શ્રુતસાગર અપાર છે, આયુષ થોડું છે, જીવો બુદ્ધિશાળી નથી, માટે જે થોડું પણ કાર્યકારી થાય તે શિખવું. દૃષ્ટાંતથી નિર્ધનનું જીવિત કષ્ટમય બતાવી, ધર્મ અને ધનનો અવિનાભાવ સંબંધ કહ્યો છે. પુરુષાર્થ કરતાં પુણ્યની પ્રબળતા દર્શાવી છે. પૃષ્ઠ ૪૬.

તપ કરતાં વિદ્યાનું પ્રાધાન્ય બતાવી કુપાત્રને આપેલી વિદ્યા નિષ્ફળ બતાવી છે. એકલી વિદ્યાથી જ નહિ પણ તપથી યે પાત્રતા આવે છે, ને બન્ને જ્યાં હોય તે જ પાત્ર છે. માઘકવિ દારિદ્રય સંતોષથી સહે છે, પણ યાચકો પાછા જાય છે તેનું દુ:ખ તેને અસહ્ય લાગે છે તે કહ્યું છે. બાહ્યશત્રુ કરતાં અંતરંગશત્રુ વધારે બલવાન્ કહ્યા છે. વેર, વૈશ્વાનર–અગ્નિ, વ્યાધિ, વાદ ને વ્યસન મહા અનર્થકારી કહ્યા છે. અઢારભાર વનસ્પતિનાં નામો આપ્યાં છે, ને ચાર પુષ્પિત, આઠ ફલ ને પુષ્પવાળી, ને છ વેલો એમ અઢાર કહી છે. પૃષ્ઠ ૪૭.

પુસ્તક લેખન રક્ષણનાં શુભ ફળ કહ્યાં છે. બાલક સ્ત્રી મન્દમતિ તથા મૂર્ખ ને ચારિત્રની ઇચ્છાવાળા માટે સિદ્ધાંત પ્રાકૃતમાં રચ્યા છે. માયાશીલ મનુષ્યનો વિશ્વાસ ન થાય; મોર મધુર બોલે છે, પણ ઝેરી નાગને ખાય છે. પરાશ્રય દુ:ખકારી કહ્યો છે. પુત્ર પિતા જેવો હોય એ કથન ખોટું છે–સૂર્યાસ્ત થતાં શનિ એક ક્ષણ પણ પ્રકાશ આપતો નથી. કન્યાનો પિતા હમેંશ દુ:ખી હોય છે. વસંતઋતુમાં કાગડો તે કાગડો ને કોયલ તે કોયલ જણાઈ આવે છે. રાંધની મુશ્કેલી ત્યાં લાડવાની શી વાત? વચનમાં જ દરિદ્રતા તો ધનની શી આશા ? અતિ પરિચયથી વિશિષ્ટ વસ્તુ પ્રત્યે પણ અવજ્ઞા થાય છે, જેમ પ્રયાગમાં પ્રાયે લોક કુવાપર ન્હાય છે. પછી મચ્છરની, હંસની, કોકિલની, મોરને પીછાંની તથા જલની અન્યોક્તિઓ તથા કેટલાંક સુભાષિતો આપ્યાં છે. અપમાન થતાં સિંહ, સત્પુરુષ ને હાથી જતા રહે છે, પણ કાગડો, હલકો માણસ, તથા મૃગ સ્થાન છોડતા નથી. ચિતારો, કાવ્ય કરનાર, કુવૈદ્ય, તથા ખરાબ રાજા, ને ગામનો કુથલીખોર નરકે જાય છે. વામનમાં ૬૦, માંજરામાં ૮૦ને ઠુંટમુંટ–હીન અંગવાળામાં ૧૦૦ દોષ હોય છે, પણ કાણાના દોષની તો સંખ્યા જ કહી શકાય નહિ. પૃષ્ઠ ૪૮.

સારા છંદવાળી, સારા રૂપવાળી, સરસ ઉક્તિવાળી, શ્રહણ કરાતી ગાથા શ્રેષ્ઠ સુંદરીની જેમ રસ–આનંદ આપે છે. કેટલાક સુભાષિત પછી સમવસરણની બાર પર્ષદા વર્ણવી છે. બે મોઢાવાળી સોયથી સીવાય નહિ, તેમ ઇન્દ્રિય સુખ ને મોક્ષ સાથે ન સંભવે. ગ્રંથકારે રમુજ કરી છે કે વીતરાગે જે રાગદ્વેષને જિત્યા તે મુદ્ગલ થઈ હઠ કરી તેના સંતાનોની પુંઠે લાગ્યા છે. અંતરાત્મા જલથી નહિ, પણ સંયમ, સત્ય, ને શીલથી શુદ્ધ થાય છે. રોષ, દરિદ્રતા, બંધુ પ્રત્યે વેર, અતડાપણું, અત્યંત કોપ ને કડવીવાણી એ નરકમાંથી આવેલાના ચિહ્ન છે. ખાઘરાપણું, માનહીનતા, અતિબીકણપણું, અતિબલ, માનાપમાનમાં જડતા એ તિર્યંચગતિ-માંથી આવેલાના ચિહ્ન છે. સંતોષ, મધ્યસ્થતા, અલ્પકોપ, કષાયરહિતતા ને ભોગાભિલાષમાં સમચિત્તતા એ મનુષ્ય ગતિમાંથી આવેલાના ચિહ્ન છે. મુનિ તીર્થનું મૂળ છે, તેથી મુનિને આહાર આપનાર તીર્થોન્નતિ કરે છે. કેવળીના અભાવે મુનિઓ જ ઉપકારી છે. પૃષ્ઠ ૪૯.

શ્રીમહાવીરે પણ મુનિદાનના પ્રભાવે દુર્લભ બોધિ–બીજ પ્રાપ્ત કર્યું હતું. ચોરાસી પ્રકારના આસને રહી મુનિવરો કાઉસ્સગ્ગ ધ્યાન કરતા, આતાપના લેતા, કે વિવિધ તપ કરતા, ને દુષ્ટકર્મની ગ્રંથિ તોડતા. કેટલાક શ્રુતપાઠ કરતા, શંકા પૂછતા, વિચારતા કે પુનરાવર્તન કરતા હતા. તેઓ ક્રોધ, માન, લોભ, ને પરીસહ, નિદ્રા, માયા, ને ઇન્દ્રિય જિતનારા, ધીર, ને મોહનો પરાજય કરનારા હતા. ગ્રંથકાર કહે છે કે આ 'ગાથાસહસ્રી' ગ્રંથ મુખમાં તાંબૂલની જેમ શોભાકારી છે. વ્યાખ્યાન–ચાતુર્ય ઇચ્છનારે વિવિધ ગ્રંથોમાંથી શ્રમપૂર્વક અત્ર ભેગા કરેલા ગાથા, શ્લોક ને કાવ્યો કંઠસ્થ કરી વ્યાખ્યાનની વચ્ચે વચ્ચે અવસર જોઈ કહેવા જેથી ચતુર શ્રોતાઓના ચિત્ત ચમત્કાર પામશે. પ્રશસ્તિ. પૃષ્ઠ ૫૦.

આ પ્રસ્તાવના લખવાની તેમજ પ્રુફ શોધન માટે પ્રેરણા કરી આવા સુંદર ગ્રંથરત્નના પ્રકાશનમાં સાહાય્ય આપવાની તક આપવા માટે ઉપાધ્યાય શ્રી ૧૦૮ સુખસાગરજી મહારાજનો આભાર માનું છું. મુદ્રિત ગ્રંથના વાંચકને આવા ગ્રંથોના સંપાદનમાં પડતા શ્રમનો પૂરો ખ્યાલ ન આવે, પણ જેણે થોડાં પણ અવતરણોનાં મૂળ શોધવાની તકલીફ લીધી હશે તે જરૂર કહી શકશે કે અનુક્રમણી વગરના બૃહત્કાય ગ્રંથોમાંથી એકેક પ્રકીર્ણ ગાથા શોધી કાઢી સ્થળનિર્દેશ કરવો કેટલા શ્રમ ને સમયથી સાધ્ય છે. લેખકે પણ અત્ર તેમ કર્યું છે તેથી તે કહી શકે છે. પ્રાકૃત ભાષાની અનિયમિતતાએ શુદ્ધિનું કાર્ય મુશ્કેલ કર્યું હતું તેટલું જ આ ગ્રંથની હસ્તલિખિત શુદ્ધ પ્રતોના અભાવે પણ કર્યું હતું. એક જ પ્રત પરથી પ્રેસકૉપી તૈયાર થઈ હતી, ને બીજી બે પ્રતો પ્રુફ શોધનમાં ઉપયોગી થઈ હતી, પાછળથી એક અશુદ્ધ ઘણા પ્રક્ષિપ્ત ભાગવાળી પ્રત પ્રાપ્ત થઈ હતી તે ઉપયોગી થઈ ન હતી. આ ગ્રંથના વિદ્વાન્ સંપાદક શ્રી સુખસાગરજીએ છતાં શ્રમ લઈ પ્રકાશનકાર્ય ઉત્સાહપૂર્વક પાર ઉતાર્યું છે તે માટે વાંચક વર્ગ તેમનો ઋણી છે.

૧૫ ધનજી સ્ટ્રીટ, મુંબઈ નં. ૩.
સં. ૧૯૯૬ માર્ગશીર્ષ શુક્લ ૫ શનિ. તા. ૧૬-૧૨-૩૯

મોહનલાલ ભગવાનદાસ ઝવેરી.
બી.એ. (ઑનર્સ), એલએલ.બી., સોલિસિટર.

"Aho Shrut Gyanam"

अर्हम्

॥ श्री–स्तम्भनपार्श्वनाथाय नमः ॥

श्रीमत्खरतरगच्छालङ्कार श्रीअकब्बरसाहि प्रतिबोधक जङ्गमयुगप्रधान भट्टारक श्रीमज्जिनचन्द्रसूरीश्वर-शिष्यरत्न-महोपाध्याय–श्रीसकलचन्द्रगणिवर–शिष्यवाचक समयसुन्दरगणि ग्रथितोऽयं ग्रन्थः ।

श्री गाथासहस्री ।

॥ सरस्वत्यै नमः ॥

पडिरूवाइ[१] चउद्दस, खंतीमाई[२] य दसविहो धम्मो ।
बारस य भावणाओ[३], सूरिगुणा हुंति छत्तीसं ॥ १ ॥

[इति ३६ सूरिगुणाः ॥]

छव्वय[४] छकायरक्खा[५] १२, पंचेन्द्रिय १७ लोहनिग्गहो १८ खंती १९ । भावविसुद्धी[६] २० पडिले,-हणाइ करणे विसुद्धी य २१ ॥ २ ॥ संजमजोए–जुत्त य २२, अकुसलमणवयणकायसु निरोहो २५ । सीयाइ–पीडसहणं २६, मरणं (तु) उवसग्गसहणं च २७ ॥ ३ ॥ सत्तावीसगुणेहिं, एएहिं जो विभूसिओ साहू । तं पणमिज्जइ भत्तिब्भरेण हिअएण रे जीव ! ॥ ४ ॥

[इति २७ साधुगुणाः ॥]

धम्मरयणस्स जुग्गो, अक्खुद्दो १ रूववं २ पगइसोमो ३ । लोगप्पिओ ४ अक्रूरो ५, भीरू[७] ६ असढो ७ सुदक्खिन्नू ८ ॥ ५ ॥ लज्जालुओ ९ दयालू १०, मज्झत्थो ११ सोमदिट्ठि १२ गुणरागी १३ । सक्कह[८] सुपक्खजुत्तो १४, सुदीहदरिसी १५ विसेसन्नू १६ ॥ ६ ॥ वुड्ढाणुगो १७ विणीओ १८, कयन्नूओ १९ परहिअत्थकारी अ २० । तह चेव लद्धलक्खो २१, इगवीसगुणो हवइ सड्ढो ॥ ७ ॥

[इति २१ श्रावकगुणाः[९] श्रीप्रवचनसारोद्धारे पृ. ४००]

बारगुणा[१०] अरिहंता १२, सिद्धा अट्ठेव २० सूरि छत्तीसं ५६ । पणवीसं उवज्झाया ८१, साहू सगवीस १०८ अट्ठसयं ॥ ८ ॥

[इति नवकारवाली १०८ मणिकविचारः ॥]

१–"**पडिरुवो तेयस्सी०**" इत्यादि १४ । २–"**खंतीमद्दव०**" इत्यादि १० । ३–"**पढममणिच्चमसरणं०**" इत्यादि १२ । ४–प्राणातिपातादि ६ । ५–पृथिवीकायादि ६ । ६–शुभभावना । ७–क्वापि–"**भीरू असढो०**" इत्येको गुणः । ८–"सत्कथः सुपक्षयुक्तश्च" इति गुणद्वयं पृथक् । ९–न्यायोपात्तवित्तेन सदा संतुष्टः १, अक्षतपञ्चेन्द्रियो नीरोगश्च २, स्वभावेन स्वच्छहृदयः ३, सामान्यजनवल्लभः राजादिसम्मतो वा ४, परवञ्चनाबुद्धिरहितः ५, धर्म्मं कुर्वन् मातापितृगुरुराजादिभ्यो निर्भीकः, अथवा संसारात् त्रस्तः ६, अमायी ७, अल्पात्मक्षतौ सत्यामपि बहुतरोपकृतिकरणशीलः, ८ अकार्येभ्यस्त्रपावान् ९, त्रसस्थावरजन्तुरक्षाकृत् १०, बहुतरं रागद्वेषवर्जितः ११, दर्शनमात्रादेव सर्वलोकानन्ददायी १२, गुणपक्षपातकारी न तु कुलक्रमागतकदाग्रहग्रस्तः, १३ शोभनधर्म्मकथाकथकः, सपक्षयुक्तश्च उभयवंशविशुद्धः, विशेषद्वयेनापि एक एव गुणः १४, कार्यं कुर्वन् दीर्घविचारी न तु औत्सुक्यभाक् १५, गुणागुणवित् १६, धर्मिष्ठवृद्धलोकसत्युपजीवी १७, मातृपितृगुर्वादिविनयकृत् १८, अन्यकृतोपकारज्ञः १९, परेषां संसारसागरोत्तारकः २०, सभायां राजादीनां गुर्वादीनां चेष्टाज्ञः २१ द्वितीयश्रावकगुणाः प्रकारांतरेणापि इति ॥ १०–**अट्ठारगुणा अरिहंता, सिद्धा पंचेव सूरि छत्तीसं । बावीसं उवज्झाया, साहू सगवीस अट्ठसयं** ॥ १ ॥ १८ दोषरहित पंचानन्तकसहित अनन्तज्ञान १ दर्शन २ चारित्र ३ वीर्य ४ सुख ५ रूपं ६ पञ्चानन्तकम् । उपाङ्ग १२ अङ्गदश ।

"Aho Shrut Gyanam"

जिणकप्पिआ (वि) य दुविहा, [1]पाणीपाया पडिग्गहधरा य । पाउरणमपाउरणा, इक्केक्का ते भवे दुविहा ॥ ९ ॥ दुग २-तिग ३-चउक्क ४-पणगं ५, नव ९-दस १०-एक्कारसेव ११-बारसगं १२ नेव । एए अट्ठविगप्पा, जिणकप्पे हुंति उवहिस्स ॥ १० ॥

[इति श्रीप्रवचनसारोद्धारसूत्रे ६ शते जिनकल्पिकानामष्टौ भेदाः ॥]

पत्तं १ पत्ताबंधो २, [2]पायट्ठवणं च ३ [3]पायकेसरिया ४ । पडलाइं ५ रयत्ताणं ६, च गोच्छओ ७ पायनिज्जोगो ८ ॥ ११ ॥ [4]तिन्नेव य पच्छागा, रयहरणं ९१ चेव होइ मुहपोत्ती १२ । एसो दुवालसविहो, उवही जिणकप्पियाणं तु ॥ १२ ॥

[एतानि १२ जिनकल्पिकानामुपकरणानि ॥]

एए चेव दुवालस, [5]मंत्तग अइरेग चोलपट्टो अ । एसो चउदसरूवो, उवही पुण थेरकप्पंमि ॥१३॥

[इति श्रीप्रवचनसारोद्धारसूत्रे पत्रे ११७ स्थविरकल्पिकसाधूनां १४ उपकरणानि ॥]

तण १ छार २ डगल ३ मल्लग ४ सेज्जा ५ संथार ६ पीढ ७ लेवाई ८ । सिज्जायरपिंडो सो, न होइ सो होइ बहिओत्ति ॥ १४ ॥

[इति श्रीस्थानाङ्गवृत्तौ ॥]

सावयकुलम्मि वर हुज्जा चेडओ नाणदंसणसमिद्धो । मिच्छत्तमोहिअमई, मा राया चक्कवट्टी वि ॥ १५ ॥ दुविहे गुरू पन्नत्ते तंजहा–तवोवउत्ते १ नाणोवउत्ते य २ । तत्थ तवोवउत्ते बडपत्तसमाणे १ केवलमप्पाणं तारेइ १ । नाणोवउत्ते जाणवत्तसमाणे अप्पाणं परं च तारेइ ॥ १६ ॥

[इति श्रीउपदेशसत्तरीग्रन्थे ३ अधिकारे १ उपदेशे ५१ पत्रे ॥]

जंति अ मुच्छिममणुया, पुढवाई दसपएसु नियमेण । आगच्छंती अडए, तेऊ १ वाऊ नहुंति (नोइंति) नरा ॥ १७ ॥

[इति श्रीकम्मपयडी कर्मग्रन्थे ॥]

पढमा [6]आवस्सिया १ नाम, बीया य निसीहिया २ । आपुच्छणा ३ य तइया, चउत्थी पडि-

---

१–**पाणी०** पाणिपात्राणाम् अप्रावरणानां रजोहरणं १ मुखवस्त्रिका च २ इति उपकरणद्वयम् १, पाणि० प्रावरणधराणां च द्वे ते एव एक कल्पग्रहणेन ३ उप०, कल्पद्वयग्रहणेन ४ उप०, ३ कल्पत्रयग्रहणेन उप० ५, ४ पात्रधराणां प्रावरणधराणां च ७ उपकरणानि पात्रसंबन्धानि, २ रजोहरणमुखवस्त्रिकाभ्यां सह ९ उपकरणभेदाः । ५ पात्रप्रावरणधराणां ९ तान्येव । एक कल्पग्रहणे १० उपकरणभेदाः । कल्पद्वयग्रहणे उप० ११ भेदाः । ७ कल्पत्रयग्रहणे उप० १२ भेदाः । २–**'पात्रस्थापनं'** यत्र कम्बलखण्डे पात्रं निधीयते । ३–**"पायके०"** पात्रप्रमार्जनपोतिका पटलानि भिक्षावसरे पात्रप्रच्छादकानि तानि च यदि सर्वस्तोकानि तदा त्रीणि भवन्ति अन्यथा पञ्चसप्तेति । **रय०** पात्रवेष्टनचीवरम्, **गो०** पात्र वस्त्रप्रमार्जनहेतुः कम्बलशकलरूपः । ४–**त्रय** एव प्रच्छादा द्वौ सौत्रिकौ तृतीय और्णिकः । पतद्ग्रहो येन वस्त्रखण्डेन पात्रं धार्यते कम्बलमयं पात्रो यत्र पात्रकाणि स्थाप्यन्ते, चिलिमिलिका–पात्रवेष्टानि ॥ ५–**मत्तग** नंदी पात्रः ७ **उग्गहऽणंतग पट्टो, अद्धोरुअ चलणिया बोधव्वा । अब्भंतरबाहिनियंसणि य तह कंचुए चेव ॥ १ ॥ ओकच्छिय वेकच्छिय,–संघाटी चेव खंधगरणीय । ओहोवहिंमि एए; अज्जाणं पन्नवीसं तु ॥ २ ॥** इति साध्वीनां २५ उपकरणानि ॥ ६–**'आ०'** अवश्यकर्तव्यैर्योगैर्निष्पन्ना आवश्यकी आश्रयान्निर्गच्छतो भवति साधोः १ । **'नि०'** निषेधेन निर्वृत्ता नैषेधिकी व्यापारान्तरनिषेधरूपा आश्रये प्रविशतो भवति २ । **'आ०'** आपृच्छनमापृच्छा, सा च विचारभूमिगमनादिप्रयोजनेषु गुरोः कार्या ३ । **'प०'** प्रतिपृच्छा प्रश्नः प्राग्नियुक्तेनापि कार्या ४ । **'छं०'** छन्दना च प्राग्गृहीतेन अशनादिना कार्या ५ । **'इ०'** एषणम्=इच्छा, करणं=कारः, इच्छया=बलाभियोगमन्तरेण करणम्–इच्छाकारः, यथा इच्छाकारेण ममेदं कुरु ६ । **'मि०'** मिथ्याक्रिया ७ । **'त०'** तथा करणं तथाकारः, स च सूत्रप्रश्नादिगोचरः, यथा भवद्भिरुक्तं तथैवेदम् ८ । **'अ०'** आभिमुख्येन उत्थानम् उद्यमनम् अभ्युत्थानं, तच्च गुरुपूजायां या च गौरवार्हाणामाचार्यग्लानबालादीनां यथाऽऽहारादिसंपादनम् । अत्राभ्युत्थानं निमन्त्रणाभूतरूपमेव ग्राह्यम् ९ । **'उप०'** उपसम्पत्–'इतो भवदीयोऽहम्' इत्यभ्युपगमः, सा च ज्ञानदर्शनचारित्रार्थत्वात्त्रिधा, तत्र ज्ञानसम्पत्–सूत्रार्थयोः स्थिरीकरणार्थं, तथा विश्रुटितसन्धानार्थं, तथा प्रथमतो ग्रहणार्थमुपसम्पद्यते । दर्शनोपसम्पदप्येवं नवरं दर्शनप्रभावकसन्मत्यादिशास्त्रविषया । चारित्रोपसम्पच्च वैयावृत्त्यकरणार्थं क्षपणार्थं च उपसम्पद्यमानस्येति १० ।

"Aho Shrut Gyanam"

पुच्छणा ४ ॥ १८ ॥ पंचमा छंदणा ५ नाम, इच्छाकारो ६ य छट्ठओ । सत्तमो मिच्छकारो ७ य, तहक्कारो ८ य अट्ठमो ॥ १९ ॥ अब्भुट्ठाणं ९ नवमं, दसमा उवसंपया १० । एसा दसंगा साहूणं, सामायारी पवेइया ॥ २० ॥ विहि—जिणभवणे गमणं, घरपडिमापूयणं २ च सज्झायं ३ । पुप्फवई इत्थीणं, पडिसिद्धं पुव्वसूरीहि ॥२१॥ आलोअणाइ न पडइ, पुप्फवई जं तवं करइ नियमा । पयरणसुत्तं अन्नं, न गुणेइ अ तिन्नि दिवसाइं ॥ २२ ॥ मणुआउ सम गयाई, हयाइ चउरंस अजाइ अट्ठंसा । गोमहिसुट्टखराई, पणंस साणाइ दस मंसा ॥ २३ ॥ (मोहो कोडाकोडी सत्तरि वीस च नाम गोयाणं । तीसऽयराणि चउण्हं तित्तीसऽयराणि आउस्स ॥) एगो य सत्तमीए, पण हरि छट्ठीइ पंचमी एगो । एगो अ चउत्थीए, कण्हो तइयाइ पुढवीए ॥ २४ ॥ अट्ठ बलदेव सिद्धा, चरिमो पुण॰ पंचमम्मि कप्पम्मि । उस्सप्पिणीइ सो पुण, सिज्झस्सइ कण्हतित्थंमि ॥ २५ ॥ अनियाणकडा रामा, सव्वेवि केसवा नियाणकडा । उड्ढंगामी रामा, केसव सव्वे अहोगामी ॥ २६ ॥ उसभस्स तिन्नि गाऊ, बत्तीस धणूणि वद्धमाणस्स । सेस जिणाणमसोगो, सरीरओ बारसगुणो य ॥ २७ ॥ बारवरिसेहिं गोयमो, सिद्धो वीराओ वीसहिं सुहम्मो । चउसट्ठीए जंबू, वुच्छिन्ना तत्थ दस ठाणा ॥ २८ ॥ मण १ परमोहि २ पुलाए ३, आहारग ४ खवग ५ उवसमे ६ कप्पे ७ । संजमतिअ ८ केवलि ९ सिज्झणाय १० जंबुम्मि वुच्छिन्ना ॥ २९ ॥

[इति श्रीप्रवचनसारोद्धारे ॥]

चत्तारि वाराओ, चउदसपुव्वी करेइ आ(शरीरं)हारं । संसारम्मि वसंतो, एगभवे दुन्नि वाराओ ॥३०॥ अरिहंत १ चक्कि २ केसव ३, बल ४ संभिन्ने अ ५ चारणे ६ पुव्वा ७ । गणहर ८ पुलाय ९ आहारगं च १० न हु हवइ महिलाणं ॥ ३१ ॥ एगिंदिय १ पंचेंदिय २, उड्ढे अ अहे अ तिरियलोए अ । विगलिंदिअ जीवा पुण, तिरिअलोए मुणेअव्वा ॥ ३२ ॥ पुढवी १ आऊ २ वणस्सई ३, बारसकप्पेसु सत्त पुढवीसु । पुढवी जा सिद्धिसिला, तेऊ नरखित्ति तिरिलोए ॥ ३३ ॥ "सिद्धान्ते तु—एकयोजनोच्चं" बारसजोअणपिहुला, सुँघोसघंटा य अद्धउच्चत्तं । चत्तारि अ लालाओ, देवा सयपंच वायंति ॥ ३४ ॥ जावजीव १ वरिस २ चउमास ३ पक्खगा ४ निरय १ तिरि २ नरा ३ अमरा ४ । सम्मा १ णु २ सव्वविरई ३, अहखायचरित्त ४ घायकरा ॥ ३५ ॥ चक्खुनिरक्खणमेगं १, पुरिमा छच्चेव ७ पुव्व कायव्वा । अक्खोडा १६ पक्खोडा २५, नव ९ पणवीस इच्छंति ॥ ३६ ॥ बारस बाहिं १२ ठाणा, बारस ठाणाइं २४ हुंति मज्झंमि । पत्तपडिलेहणाए, पणवीसो होइ करप्फंसो ॥ ३७ ॥

[इति यतिदिनचर्यायाम् पृ० ४० ॥]

१–वाससयंपि सवीसं, सयं च दिणमाउ मणुअहत्थीणं । चउवीस वरिसमाऊ, गोमहिसीणं स एगदिणं ॥ १ ॥ बत्तीसं तुरगाणं, सोलस पसु एलगाण वरिसाइं । बारस सम सुणगाणं खरकरहाणं चपणवीसं ॥२॥ १२० व० मनुष्यगजादि । ३२ मास ६ हयादि । १६ मास ३ अजादि । २६ गोमहिषी ऊंटाख० । १२ श्वानादि ।
२–उसभे भरहो १, अजिए, सगरो २ मघवं ३ सणंकुमारो ४ य । धम्मस्स य संतिस्स य जिणंतरे चक्कवट्टिदुगं ६ ॥ १ ॥ संती कुंथू य अरो, अरिहंता चेव चक्कवट्टी य । अरमल्लिअंतरे पुण, हवइ सुभूमो य कोरव्वो ८ ॥ २ मुणिसुव्वयनमिंपि य, हुंति दुवे पउमनाह ९ हरिसेणे १० । नमिनेमिसु जयनामो ११, अरिट्ठ पासंतरे बम्हो ॥ ३ ॥ ३–२१ धनूंषि अशोकवृक्षः, तदुपरि ११ धनूंषि चैत्यवृक्षोऽस्ति, अतः ३२ धनूंषीत्युक्तम् ॥ ४–इदानीं तत्पात्रं पात्रकेशरिकया पात्रमुखवस्त्रिकया तिस्रो वारा बाह्यतः प्रमृज्य संपूर्णाः, ततो हस्ते स्थापयित्वा अभ्यन्तरं तिस्रो वाराः पुनः प्रमृज्य ततः किं करोतु 'पप्फोडे'त्ति सकृदेकवारम् अधोमुखं कृत्वा भुवि प्रस्फोटयेत्, एवं केचिदाचार्या ब्रुवते । केचित्पुनराचार्या एवं भणन्ति यदुत तिस्रो वाराः प्रस्फोटनीयम् । एतदुक्तं भवति—एकवाराः प्रमृज्य पश्चादधोमुखं प्रस्फोटनीयम् । तच्च पात्रकं भुव उपरि किंचिद्दूरे प्रस्फोट्य रक्षणीयमित्यत आह—चतुर्भिः रङ्गुलैर्भुव उपरि धारयित्वा प्रत्युपेक्षणीयं मा भूत्पतनभङ्गभयम् इति । ओघनिर्युक्तिवृत्तौ ॥ पात्रस्य सप्त प्रत्युपेक्षणाः, केषाञ्चिन्मते तिस्र एव ताः ॥

"Aho Shrut Gyanam"

पत्तं पमज्जिऊणं, बर्हिअं अंतो सयं तु पप्फोडे । केई पुण तिन्निवारा, चउरंगुलभूमि पडण(त)भया ३८

[इति ओघनिर्युक्तौ ॥]

आमोसहि १ विप्पोसहि २ खेलोसहि ३ जल्लोसही चेव ४ । सव्वोसहि ५ संभिन्ने ६, ओही ७ रिउ ८ विउलमइलद्धी ॥ ३९ ॥ चारण १० आसीविस ११ केवली अ १२ गणहारिणो य १३ पुव्वधरा १४ । अरिहंत १५ चक्कवट्टी १६, बलदेवा १७ वासुदेवा य १८ ॥ ४० ॥ खीरमहुसप्पिआसव १९, कोट्ठगबुद्धी २० पयाणुसारी २१ अ । तह बीअबुद्धि २२ तेअग २३, आहारग २४ सीअलेसा य २५ ॥ ४१ ॥ वेउव्विदेहलद्धी २६, अक्खीणमहाणसी २७ पुलाय २८ तहा । परिणामतववसेणं, एयाओ हुंति लद्धीओ ॥ ४२ ॥ ("भवसिद्धियपुरिसाणं, एयाओ हुंति भणियलद्धीओ । भवसिद्धियमहिलाणवि, जत्तिय जायंति तं वोच्छं ॥ १ ॥ अरहंतचक्किकेसवबलसंभिन्ने य चारणा पुव्वा । गणहरपुलायआहारगं च न हु भवियमहिलाणं ॥ २ ॥") अभविअपुरिसाणं पुण, दस पुव्विल्लाओ केवलित्तं ११ च । उज्जुमई १२ विउलमई तेरस, एयाओ न हुंति लद्धीओ ॥ ४३ ॥ अभवियमहिलाणंपि हु, एयाओ न हुंति भणियलद्धीओ । महुखीरासवलद्धीवि १४ नेय सेसाओ अविरुद्धा ॥ ४४ ॥ समणीमवगयवेअं १, परिहार २ पुलाय ३ मप्पमत्तं च । चउदसपुव्विं ४ आहारगं च १ नय कोई संहरई ॥ ४५ ॥

[भगवतीवृत्तौ ॥]

सुत्तत्थतत्तदिट्ठी १ दंसणमोहतिअगं च ४ रागतिअं ७ । देवाइतत्ततियं १०, तहा अदेवाइतत्ततिअं १३ ॥ ४६ ॥ नाणाइतिअं १६ तह तविराहणा १९ तिन्निगुत्ति २२ दंडतिअं २५ । इअ मुहणंतगपडिलेहणाइ कमसो विचिंतिज्जा ॥ ४७ ॥ हासो १ रई अ २ अरई ३, भय ४ सोग ५ दुगंछया य ६ वज्जिज्जा । भुअजुअलं पेहंतो, सीसे सुपसत्थलेसतिगं ॥ ४८ ॥ गारवतिअं च वयणे १२, उरिसल्लतिगं १५ कसाय चउ पिट्ठे १९ । पयजुगि छज्जीववहं २५, तणुपेहाएवि जाणमिणं ॥ ४९ ॥ जइवि पडिलेहणाए, हेऊ जिअरक्खणं जिणाणा य । तहवि इमं मणमक्कड, निज्जं तणत्थं मुणी बिंति ॥ ५० ॥

[इति मुखवस्त्रिका १ देहयोः २ प्रतिलेखनाविचारः ॥]

सासे १ खासे २ जरे ३ दाहे ४ कुच्छिसूले[1] ५ भगंदरे ६ । अरिसे ७ अजीरए ८ दिट्ठी ९ मुद्धसूले १० अकारए ११ ॥ ५१ ॥ अच्छिवेयणा[2] १२ कन्नवेयणा १३ कंडू १४ य उदरे १५ कोढे १६ ॥

[॥ इति विपाकसूत्रे प्रथमाध्ययने १६ रोगाः ॥]

जइ पोसहिओ सहिओ, तवनियमगुणेहिं गमइ एगदिणं । ता बंधइ देवाउं, इत्तियमित्ताइं पलियाइं ॥ ५२ ॥ तथाहि—सगवीसं कोडिसया, सतहत्तरिकोडिलक्खसहसा य । सत्तसया सत्तहुत्तरि, नवभागा सत्त पलियस्स ॥ ५३ ॥

[॥ २७७७७७७७७७ ७/९ इति पौषधे देवायुर्बन्धप्रमाणम् ॥]

बाणवइकोडीओ, लक्खागुणसट्ठिसहस्स पणवीसं । नवसयपणवीसजुआ, सतिहा अडभाग पलियस्स ॥ ५४ ॥

[॥ ९२५९२५९२५ ३/८ इति सामायिके देवायुर्बन्धप्रमाणम् ॥]

१–'जोणीसूले'ति पाठः 'कुच्छिसूले' इत्यस्यान्यत्र दर्शनात् । २–'अच्छिवेयणे'त्यादिश्लोकातिरिक्तम् ।

"Aho Shrut Gyanam"

निव १ धणि २ नारी ३ नर ४ सुर ५, अप्पप्पविआर ६ अपविआरत्तं ७ । सड्ढत्त ८ दरिद्दत्तं ९, चइज्जा इअ नवनिआणाइं[1] ॥ ५५ ॥ कल्लाणगे दिप्पणए, नवनवइतिहिसु तत्थ इग छक्को । बावन्नेगुववासा, चालीस दुआ तिया छक्क ॥ ५६ ॥

[विधिप्रपायाम्-]

तत्रैकयोजनोत्सेधां, विस्तारेऽप्येकयोजनाम् । भरतार्द्धवासिनीभिः-देवताभिरधिष्ठिताम् ॥ ५७ ॥ शिलां कोटिशिलां नाम, दक्षिणेतरबाहुना । चतुरङ्गुलमुद्दध्रे, पृथ्वीतः कंससूदनः ॥ ५८ ॥ तां भुजाग्रे दधौ विष्णु-राद्यो मूर्ध्नि द्वितीयकः । कण्ठे तृतीयस्तूर्यस्तूरःस्थले पञ्चमो हृदि ॥ ५९ ॥ षष्ठः कट्यां षडधिकस्तूर्वोराजानोश्चाष्टमः । चतुरङ्गुलमन्त्योऽवसर्प्पिण्यां ते पतद्बलाः ॥ ६० ॥ परमिड्ढीण जुवाणं, सोलसवच्छरओ वि ओगमिलिआणं । जे हुंति कामभोगा, नरमिहुणाणं तओ हुंति ॥ ६१ ॥ वंतरअसुरविवज्जिअ, भवणवई असुर *तारयाईणं । ससिसूराणं च तहा, जहक्कमा ते अणंतगुणा ॥ ६२ ॥ तत्तो वि उत्तमा खलु, दिव्वा वेमाणियाण पन्नत्ता । बारससयंमि छट्ठुद्देस अंगंमि पंचमए ॥ ६३ ॥ पावयणी १ धम्मकही २, वाई ३ नेमित्तिओ ४ तवस्सी य ५ । विज्जा ६ सिद्धो ७ अ कई, अट्ठेव पभावगा भणिआ ॥ ६४ ॥ उण्हे करेइ सीअं, सीए उण्हत्तणं पुण करेइ । कंबलरयणादीणं, एस सहाओ मुणेअव्वो ॥ ६५ ॥ सो लद्धि अपज्जत्तो, जो मरइ अपूरिअं सपज्जत्तिं । लद्धिपज्जत्तो सो पुण, जो मरइ ताओ पूरित्ता ॥ ६६ ॥ न जवि पूरेइ परं, पूरिस्सइ स इह करणअपज्जत्तो । सो पुण करणपज्जत्तो, जेणं ता पूरिया हुंति ॥ ६७ ॥ सव्वसुरा जइ रूवं, अंगुट्ठपमाणयं विउव्विज्जा । जिणपायंगुट्ठं पइ, न सोहए तं जहिं गालो ॥ ६८ ॥ गणहर १ आहार २ अणुत्तरा य जाव वण ३ चक्कि ४ वासुबला ५ । मंडलिया ६ जा हीणा, छट्ठाणगया भवे सेसा ॥ ६९ ॥ थूला सुहुमा जीवा, संकप्पारंभओ य ते दुविहा । सऽवराह निरऽवराहा, साविक्खा चेव निरविक्खा ॥ ७० ॥ उसभ १ ससि २ संति ३ सुव्वय ४, नेमीसर ५ पास ६ वीर ७ सेसाणं ८ । तेर १ सग २ बार ३ नव ४ नव ५, दस ६ सगवीसा य ७ तिन्नि भवा ८ ॥ ७१ ॥ एगा हिरण्णकोडी, अट्ठेव अणूणगा सयसहस्सा । सूरोदयमाईयं, दिज्जइ जा पायरासीओ ॥ ७२ ॥ तिन्नेव य कोडिसया, अट्ठासीअ हुंति कोडीओ । असिअं तु सयसहस्सा, एवं संवच्छरे दिन्नं ॥ ७३ ॥ पहसंत—गिलाणेसु १, आगमगाहीसु तहय २ लोअकारीसु ३ । उत्तर ४ पारणगंमि अ ५, दिन्नं च बहुफलं होइ ॥ ७४ ॥ जिणभवण १ बिंब २ पुत्थय ३, संघसरूवाइ ४ सत्तखित्ताइं । जिण्णुद्धारो ५ पोसह-साला ६ सौहारणं ७ चेव ॥ ७५ ॥

१–षड्निदानी सम्यक्त्वमपि न लभते, सप्तमनिदानी सम्यक्त्वं लभते, परं देशविरतिं न लभते, अष्टमनिदानी सम्यक्त्व देशविरती लभते परं सर्वविरतिं न लभते, नवमनिदानी सम्यक्त्व देशविरतिसर्वविरती लभते परं मुक्तिं न लभते, यदुक्तम्-"छसु दुलहबोहित्थं, देसे सव्वेय विरइ मुक्खे अ । सत्तममाइसु न भवे, सगुणो ताए अवज्जिज्जा ॥ १ ॥ २–एतदर्थप्रतिपादकं गाथात्रयं श्रीतिलकाचार्यकृतायां श्रीदशवैकालिकवृत्तावप्यस्ति ।

* तारयाइणं–तारा–नक्षत्र–ग्रहाणाम् । ३–प्रवचनं द्वादशाङ्गं गणिपिटकं तदस्यास्तीति प्रवचनी-युगप्रधानागमः १ । धर्मकथा प्रशस्ता अस्यास्तीति धर्मकथी शिखादित्वादिन् २ । वादि १ प्रवादि २ सभ्य ३ सभापति ४ लक्षणायां चतुरङ्गायां प्रतिपक्षनिरासपूर्वकं स्वपक्षस्थापनार्थमवश्यं वदतीति वादी ३ निमित्तं । त्रैकालिकलाभालाभप्रतिपादकं तद्वेत्ति अध्येति वा नैमित्तिकः ४ । तपो विकृष्टमष्टमादि अस्यास्तीति तपस्वी ५ । विद्याः-प्रज्ञप्त्यादयः शासनदेवतास्ताः साहायके यस्य स विद्यावान् ६ । अञ्जन १ पादलेप २ तिलक ३ गुटिका ४ भूताकर्षण ५ निकर्षण ६ वैक्रियत्व ७ प्रभृतयः सिद्धयस्ताभिः सिद्ध्यति स्म सिद्धः ७ । कवते गद्यपद्यादिभिः प्रबन्धैर्वर्णानां काश्यते इति कविः ८ । एते प्रवचन्यादयोऽष्टौ भगवच्छासनस्य देशकालाद्यौचित्येन साहाय्यकरणात्प्रभावकाः ॥ ४–संवत्सरीदानाधिकारः । ५–इति क्षेत्राणि ७ ।

"Aho Shrut Gyanam"

संघयणं १ संठाणं २ च पढमगं जो उ पुब्वउवओगो ३ । एए तिन्निवि ठाणा, वुच्छिन्ना थूलभद्दंमि ॥ ७६ ॥ तित्थगररिद्धिदंसणत्थ १ मत्थावगमहेउं वा २ । संसयवुच्छेअत्थं, गमणं जिणपायमूलंमि ॥ ७७ ॥ सा पुण दुविहा सिक्खा, गहणे १ आसेवणे २ य नायव्वा । गहणे सुत्ताहिज्जण, आसेवण कप्पतिप्पाई ॥ ७८ ॥ आलस्स १ मोह २ वन्ना ३, थंभा ४ कोहा ५ पमाय ६ किवणत्ता ७ । भय ८ सोगा ९ अन्नाणा १०, वक्खेव ११ कोलूहला १२ रमणा १३ ॥ ७९ ॥ पम्हट्ठे सारणा वुत्ता, अणायारस्स वारणा । चुक्काण चोयणा वुत्ता, निट्ठुरं पडिचोयणा ॥ ८० ॥ पडिकमणे १ चेइयहरे २, भोअणकाले अ ३ तह य संवरणे ४ । पडिकमण ५ सुअण ६ पडिबोहकालियं ७ सत्तहा जइणो ॥ ८१ ॥ भिन्नमुहुत्तो नरएसु तिरिअमणुएसु हुंति चत्तारि । देवेसु अद्धमासो, उक्कोस विउव्वणाकालो ॥ ८२ ॥ अट्ठण्हं जणणीओ, तित्थयराणं तु हवंति सिद्धाओ । अट्ठ य सणंकुमारे ३, माहिंदे अट्ठ बोधव्वा ॥ ८३ ॥ नागेसुं उसभपिआ, सेसाणं सत्त हुंति ईसाणे । अट्ठ य सणंकुमारे, माहिंदे अट्ठ बोधव्वा ॥ ८४ ॥ अन्नजलं १ उण्हं वा २ कसायदव्वेहिं मीसियं वावि ३ । कप्पइ जईण नन्नं, सुविहिय कप्पट्ठियाणं च ॥ ८५ ॥ जायइ सचित्तया से, गिम्हंमि उ पहरपंचगस्सुवरिं । चउपहरुवरिं सिसिरे, वासासु पुणो तिपहरुवरिं ॥ ८६ ॥ वासासु पन्नरदिवसं,–सि उण्हकालेसु मास वीस दिणा । ओगाहिमं जईणं, कप्पइ आरब्भ पढमदिणं ॥ ८७ ॥ जगरा य बारपहुरा, विसं तक्ककरंबको गिण्हइ । पच्छा निगोअजंतू, उप्पज्जइ सव्वदेसेसु ॥८८॥ पणदिणमी सो लुट्टो, अचालिओ सावणे ण भद्दवए । चउ आसोए कत्तिअ, मगसिरपोसेसु तिण्णि दिणा ॥ ८९ ॥ पणपहर माह-फग्गुणि, पहरा चत्तारि चित्त–वइसाहे । जिट्ठासाढे तिपहर, तओ परं होइ अचित्तो ॥ ९० ॥ विदले भोयणे चेव, कंठे जीवा अणंतसो । उदरंमि गए चेव, जीवाण न होई उप्पत्ती ॥ ९१ ॥ वासासु सगदिणोवरि, पणरसदिणोवरिं च हेमंते । जायइ सचित्तयं पुण, गिम्हे मासोवरिं लूणं ॥ ९२ ॥ पडिकमण १ गमण २ भोयण ३, पडिलेहण ४ वत्थ ५ मुत्त ६ गहणेसु ७ । वज्जेअव्वा वत्ता, साहूहिं साहुणीहिं सयं ॥९३॥ सुत्ते १ अत्थे २ भोयण ३, काले ४ आवस्सए अ ५ सज्झाए ६ । संथारे चेव तहा ७, सत्तविहा मंडली जइणो ॥ ९४ ॥ अणुवट्ठविअं सेहं, अकयविहाणं च मंडलीए उ । जो परिभुंजइ सहसा; सो गुत्तिविहारओ भणिओ ॥ ९५ ॥

[॥ श्रीपञ्चवस्तुके ६७६ गाथा ॥]

पंचसया चोआला, तइआ सिद्धिं गयस्स वीरस्स । तो अंतरं जिआए, तेरासिअदिट्ठि उप्पत्ती ॥ ९६ ॥
छव्वाससएहिं नवुत्तरेहिं सिद्धिं गयस्स वीरस्स । तो बोडिआण दिट्ठी, रहवीरपुरे समुप्पन्ना ॥ ९७ ॥
बारसवाससएहिं सड्ढेहिं निव्वुअस्स वीरस्स । जिणघरमढआवासो, पगप्पिओ सायसीलेहिं ॥ ९८ ॥
पंचसु सएसु वरिसाण अइगएसुं जिणाउ वीराओ । वयरो सोहग्गनिही, सुनंदगब्भे समुप्पन्नो ॥९९॥

१–इति त्रयोदशका—याः । २–भिन्नः खण्डो मुहूर्त्तो भिन्नमुहूर्त्तमित्यर्थः । उत्कर्षतो विकुर्वणा भणिता । इति **जीवाभिगमवृत्तौ** व्याख्या० श्री**भगवती**सूत्रे ८ शतके १० उद्देशे पञ्चेन्द्रियतिर्यङ्मनुष्याणां वैक्रियदेशबन्धः, उत्कर्षतोऽन्तर्मुहूर्त्तमेवोक्तम् । ३–अनुपस्थापितं शिष्यकं मतेषु अकृतविधानं च अकृताचामाम्लादिसमाचारं च मण्डल्यामेव यः परिभुङ्क्ते सहसा तत्क्षणमेव स गुप्तिविराधको भणितः अर्हद्भिरिति गाथार्थः ॥ मइ नै पूजी अरणी भरणी, माहरइ नहि छै सासू तरुणी, ल्यइरे मुंहडा लब्बाक ॥ इति स्त्रीवाक्यम् ॥ मइ नै पूज्यउ आलउ मालउ, माहरे नहि छै सुसरउ सालउ । ल्यइरे वांसा धब्बाक ॥ इति भर्त्तार वाक्यम् ॥ कथा–पोपटचाल्यौ पाटासार १ तृण दीधइ चाल्याउ मुरारि २ । पंडित चाल्यउ घालइ तेल ३, मूरख चाल्यउ ठेलाठेल ४ ॥ ४–इति दिगम्बरोत्पत्तिः ॥ ४७० विक्रमसंवत् । ततः ५८५ **हरिभद्रसूरिः** । ततो वीरनिर्वाणात् **हरिभद्रसूरिः** १०५५ ॥

"Aho Shrut Gyanam"

पंचसए पणसीए, विक्कमकालाओ झत्ति अत्थमिओ । हरिभद्दसूरिसूरो, निवुओ दिसउ सिवसुक्खं ॥ १०० ॥ तेरसवाससएहिं, वीराओ समहिएहिं निवपुत्तो । सिरिबप्पभट्टिसूरी, विउसाण सिरोमणी जाओ ॥ १०१ ॥ पणसयरिवरसाणं, तिन्निसय समन्नियं अइक्कमियं । विक्कमकालाओ तओ, वेलही-भंगो समुप्पन्नो ॥ १०२ ॥ श्रीविक्रमादित्यनृपस्य काला-दष्टोत्तरे १०८ वर्षशते व्यतीते । शत्रुञ्जये जावडिना प्रतिष्ठा, बिम्बस्य पाषाणमयस्य कारिता ॥ १०३ ॥ छव्वाससएहिं नवुत्तरेहिं रयणेण रेवय-गिरिंमि । संठवियं मणिबिंबं, कंचणभवणाउ नेऊणं ॥ १०४ ॥ बारसवाससएहिं, पन्नासहिएहिं वद्ध-माणाओ । चउद्दसिपढमपवेसो, कप्पिओ साइसूरीहिं ॥ १०५ ॥

[॥ इति गच्छोत्पत्तिप्रकीर्णके ॥]

तेणउअनवसएहिं, समइक्कंतेहिं वद्धमाणाओ । पज्जोसवणचउत्थी, कालगसूरीहिंतो ठविआ ॥१०६॥ वीसहिं दिणेहिं कप्पो, पंचगहाणीइ कप्पठवणा य । नवसयतेणउएहिं, वुच्छिन्ना संघआणाए ॥ १०७ ॥ सालाहणेण रन्ना, संघाएसेण कारिओ भयवं । पज्जोसवणचउत्थी, चाउम्मासं च चउ-दसिए ॥ १०८ ॥ चउमासयपडिकमणं, पक्खिअदिवसम्मि चउव्विहो संघो । नवसयतेणउएहिं, आयरणं तं पमाणंति ॥ १०९ ॥

[॥ इति गाथाचतुष्टयं तीर्थोद्गालिप्रकीर्णके ॥]

सिरिवीराओ गएसुं, पणतीसहिएसु तिवारससएसु ३३५ । पढमो कालगसूरी, जाओ सामज्जना-मुत्ति ॥ ११० ॥ चउसयतिपन्नवरिसे ४५३, कालिगगुरुणा सरस्सई गहिआ । चउसयसत्तरि ४७० वरिसे, वीराओ विक्कमो जाओ ॥ १११ ॥ कालो १ सहाव २ नियई ३, पुव्वकयं ४ पुरिसकारणे गंता ५ । मिच्छत्तं ते चेव उ, समासओ होंति सम्मत्तं ॥ ११२ ॥ सव्वेवि अ कलाई, इअ समुदाएण साहगा भणिआ । जुज्जंति अ एमेव य, सम्मं सव्वस्स कज्जस्स ॥ ११३ ॥ नहि कालाईहिंतो, केव-लएहिं तु जायए किंचि । इह मुग्गरंधणादिवि, ता सव्वे समुदिआ हेऊ ॥ ११४ ॥

[॥ पञ्चवस्तुके पृ० २८० ॥]

जह-णेगलक्खणगुणा, वेरुलिआदी मणीवि संजुत्ता । रयणावलिववएसं, न लहंति महग्घमुल्लावि ॥ ११५ ॥ असिअसयं १८० किरियाणं, अकिरिआणं च होइ चुलसीए ८४ । अन्नाणी सयसट्ठीय ६७, वेणइआणं च बत्तीसं ॥ ३२ ॥ ११६ ॥ काल १ यदृच्छा २ नियति ३ स्वभावे ४ श्वरा ५ त्मन-श्चतुरशीतिः । नास्तिकवादिगतमते, न नास्ति भावाः स्वपरसंस्थाः ॥ ११७ ॥ अज्ञानिकवादिमते, नवजीवादीन् सदादिसप्तविधान् । भावोत्पत्तिः सदसद्वैतावाच्यं च को वेत्ति ॥ ११८ ॥ वैनयिकमतं विनयश्चेतो वाक्कायदानतः कार्यः । सुर १ नृपति २ यति ३ ज्ञाति ४ स्थविरा ५ धर्म ६ मातृ ७ पितृषु ८ सदा ॥ ११९ ॥ पुरिमेण पच्छिमेण य, एए सव्वेवि फासिआ ठाणा । मज्झिलेहिं, जिणेहिं, एगं दो तिन्नि सव्वे वि ॥ १२० ॥ सामग्गिअभावाओ, ववहारिअरासिअप्पवेसाओ । भवावि ते

१–वलही-चमारडीभङ्गो जातः ॥ २–कालः १ स्वभावः २ नियतिः ३ पूर्वकृतं ४ पुरुषाकारः ५, एते पञ्च समवायाः ॥ कालः स्वभावो नियतिः पूर्वकृतं पुरुषकारोनैकान्ता एव कारणं विश्वस्येत्येवंभूताः, मिथ्यात्वं त एव समासतो भवन्ति सम्यक्त्वं सर्वे एव समुदिताः सन्तः फलजनकत्वेनेति गाथार्थः ॥ पञ्च० १०४९ गाथा ॥ ३–एतदेव स्पष्टयति–सर्वेऽपि च कालादयो-ऽनन्तरोपन्यस्ता इव समुदायेनेतरेतरापेक्षासाधका भणिताः प्रवचनज्ञैः, युज्यन्ते च एवमेव सम्यक्साधकाः सर्वस्य कार्यस्य रन्धनादेः, अन्यथा साधकत्वायोगादिति गाथार्थः ॥ पञ्च० १०५० गाथा । ४–एतदेवाह—न हि कालादिभ्यः अऽनन्तरो-दितेभ्यः केवलेभ्य एव जायते किञ्चित्कार्यं जातम्, इह लोके मुद्गरन्धनाद्यपि बाह्यमास्तां तावदेतत् यत एवं तत्सर्वे कालादयः समुदिता एव हेतवः सर्वस्य कार्यस्येति गाथार्थः इति पञ्चवस्तुकवृत्तौ १०५१ गाथा ॥

"Aho Shrut Gyanam"

अणंता, जे सिद्धिसुहं न पावंति ॥ १२१ ॥ इंदत्तं १ चक्कित्तं २, पंचुत्तरविमाणवासिदेवत्तं ३ । लोगंतिअदेवत्तं ४, अभव्वजीवेहिं नो पत्तं ॥ १२२ ॥ 'मि'त्तिमिउमद्दवठिओ, 'छ'त्तिअदोसाण छायणे होइ । 'मि'त्तिअ मेराइठिओ, 'दु'त्तिदुगंछामि अप्पाणं ॥ १२३ ॥ 'क'त्तिकडं मे पावं, 'ड'त्तिअ डावेमि तं उवसमेणं । एसो मिच्छादुक्कड,-पयक्खरत्थो समासेणं ॥ १२४ ॥ सव्वेणवि अलिएणवि, चेइअसम्माइ जो कुणइ मूढो । सो नट्ठबोहिबीओ, अणंतसंसारिओ होइ ॥ १२५ ॥ इक्कारस अंगाइं, बारस उवंगाइं, दस पइन्नाइं । छ—चेअमूल चतुरो, नंदीअणुओगदाराइं ॥ १२६ ॥ ओराजीपन्नवन्ना, सू जं चं नि-क-क-पुप्फ-वण्हिदसा । आयाराइउवंगा, नायव्वा आणुपुव्वीए ॥ १२७ ॥

[विधिप्रपायाम् ॥]

अविहिकयावरम-कयं, असूअवयणं भणंति गीयत्था । पायच्छित्तं जम्हा, अकए गुरुअं कए लहुअं ॥ १२८ ॥ जोअणसयं तु गंता, अणहारेणं तु भंडसंकंती । वाया-गणि-धूमेण २ अ, विद्धत्थं होइ लोणाई ॥ १२९ ॥

[प्रवचने ॥]

हरिआल १ मणोसिल २ पिप्पली य ३ खज्जूर ४ मुद्दिआ ५ अभया ६ । आइण्णमणाइण्णा तेऽवि हु एमेव नायव्वा ॥ १३० ॥ पत्ताणं १ पुप्फाणं २, सरडुफलाणं ३ तहेव हरिआणं १२१ । बिंटंमि मिलाणंमि, नायव्वं जीवविप्पजढं ॥ १३१ ॥

[॥ श्रीबृहत्कल्पसूत्रवृत्तौ ॥]

नय किंचि अण्णुन्नायं, पडिसिद्धं वावि जिणवरिंदेहिं । मोत्तुं मेहुणभावं, न तं विणा रागदोसेहिं ॥ १३२ ॥ छम्मासाऊ सेसे, उप्पन्नं जेसि केवलन्नाणं । ते नियमा समुघाइया, सेसा समुघाइ भइणिज्जा ॥ १३३ ॥ वेअणिअस्स उ बारस, नामगोआण अट्ठओ मुहुत्ता । सेसाण जहन्नठिई, भिन्नमुहुत्तं जिणुद्दिट्ठं ॥ १३४ ॥ एला १ लवंग २ केला ३, खयरवडी ४ खयरसार ५ कप्पूरा ६ । खारिक ७ टुप्पर ८ खज्जूर ९ दक्ख १० गुल ११ सव्वफलसागा १२ ॥ १३५ ॥

[॥ गाथैषा तपाश्रीदेवसुन्दरकृतसामाचार्यां, श्रीसोमसुन्दरसामाचार्यामपि ॥]

१—पृथक् नामान्यपीत्थम्—आचाराङ्ग १, सूत्रकृताङ्ग २, स्थानाङ्ग ३, समवायाङ्ग ४, भगवती ५, ज्ञाताधर्मकथा ६, उपासकदशा ७, अन्तकृद्दशा ८, अनुत्तरोपपातिका ९, प्रश्नव्याकरण १०, विपाकश्रुत ११, इत्येकादशाङ्गानि ॥ उपपातिका १, राजप्रश्नीय २, जीवाभिगम ३, प्रज्ञापना ४, सूरप्रज्ञप्ति ५, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति ६, चन्द्रप्रज्ञप्तिः ७, निरयावली ८, कल्पावतंसिका ९, पुष्पिका १०, पुष्पचूलिका ११, वह्निदशा १२, इति द्वादशोपाङ्गानि, पूर्वमीलते २३ ॥ चतुःशरणप्रकीर्णकं १, चन्द्रावेध्यक २, आउरप्रत्याख्यान ३, महाप्रत्याख्यान ४, भक्तप्रत्याख्यान ५, तन्दुलवैकालिक ६, गणिविद्या ७, मरणसमाधि ८, देवेन्द्रस्तव ९, संस्तारकप्रकीर्ण १०, इति दश प्रकीर्णकानि, पूर्वमीलने त्रयस्त्रिंशत् ३३ ॥ निशीथ १, महानिशीथ २, व्यवहार ३, बृहत्कल्प ४, जीतकल्प ५, दशाश्रुतस्कन्ध ६, इति षट् छेदग्रन्थाः, पूर्वमीलने ३९ ॥ ओघनिर्युक्ति १, पिण्डनिर्युक्ति २, दशवैकालिक ३, उत्तराध्ययन ४, इति चत्वारि मूलसूत्राणि, क्वापि विचारग्रन्थसंग्रहादौ ओघनिर्युक्तिस्थाने आवश्यकनिर्युक्तिरस्ति, पूर्वमीलने ४३, नन्दी ४४, अनुयोगद्वार ४५ आगमाः ॥ एतान्येवाऽऽगमनामानि **श्रीजिनप्रभसूरिभि**रपि स्वकृतसिद्धान्तस्तवे प्रोक्तानि; तथाहि—"**इक्कारस०**" १२६ "**ओराजी०**" १२७ । इदं गाथाद्वयं **श्रीबृहत्कल्पवृत्तौ** १, **श्रीस्थानाङ्गवृत्तौ** २, **श्रीनिशीथचूर्णि**पञ्चमोद्देशके ३, **प्रवचनसारोद्धारे** ४ च प्रोक्तमस्ति । २—स्वदेशजसाधारणा आहारभावेन योजनशतादूर्ध्वं पुनर्भिन्नाहारत्वेन शीतादिसम्पर्कैश्च अचित्तं भवति । केचित्—योजनशतस्थाने गव्यूतशतं पठन्ति, **निशीथचूर्णौ** तथैव चोक्तत्वात् । तथा भाण्डसंक्रान्त्या २ वाताग्निधूमैश्च योजनशतमपि स्वस्थाने अन्तरे वा वर्त्तमानं लवणादिकमचित्तं भवति । ३—पिप्पलीहरीतक्यादय आचीर्णा अतो गृह्यन्ते, खर्जूरद्राक्षादयः पुनरनाचीर्णास्ततोऽचित्ता अपि नं गृह्यन्ते ॥ **४—अप्पेवि जो उ कज्जे, पयाणिं किंचि सेवए साहू । सो पाविट्ठो धिट्ठो, परमप्पाणं च वोलेइ ॥ १ ॥**

"Aho Shrut Gyanam"

परिगच्छेऽवि सगच्छे, जे संविग्गा बहुस्सुआ साहू । तेसु अणुरागबंधं, मा मुंचसु मच्छरेण हओ ॥ १३६ ॥ जत्थ जलं तत्थ वणं, जत्थ वणं निच्छओ अग्गी । तेऊ–वाऊसहगो, तसा य पच्चक्खया चेव ॥ १३७ ॥ [1]चुलसीवाससहस्सा, वासा–सत्तेव पंचमासा य । वीरमहापउमाणं, अंतरमेयं जिणुद्दिट्ठं ॥ १३८ ॥ तिन्निसया तेसट्ठा ३६३, दंसणभेया परुप्परविरुद्धा । नय दूसंति अहिंसं, तं गिण्हह जत्थ सा सयला ॥ १३९ ॥

[कुमारपालचरित्रे ॥]

घाएण य घायसयं, मरणसहस्सं च मारणेणाऽवि । आलेण य आलसयं, पावइ नत्थित्थ संदेहो ॥ १४० ॥ जिणपूअणं तिसंझं, कुणमाणो सोहए अ सम्मत्तं । तित्थयरनामगोत्तं, बंधइ सेणिअनरिंदव्व ॥ १४१ ॥ मेरुगिरिकणयदाणं, धन्नाणं देइ कोडिरासीओ । इक्कं वहेइ जीवं, न छुट्टए तेण पावेणं ॥ १४२ ॥ नेव दारं पिहावेई, भुंजमाणो सुसावओ । अणुकंपा जिणिंदेहिं, सड्ढाणं न निवारिया ॥ १४३ ॥ उत्तमपत्तं साहू, मज्झिमपत्तं सुसावया भणिया । अविरइसम्मद्दिट्ठी, जहन्नपत्तं मुणेयव्वं ॥ १४४ ॥ [2]ओहो सुओवउत्तो, सुअनाणी जइऽवि गिण्हइ असुद्धं । तं केवली–वि भुंजइ, अपमाण सुअं भवे इहरा ॥ १४५ ॥ सावणबहुलपडिवए, बालवकरणे अभीइनक्खत्ते । सव्वत्थ–पढमसमए, जुगस्स आई वियाणाहि ॥ १४६ ॥

[ज्योतिष्करण्डके २९ पत्रे ॥]

वत्थन्नपाणासणखाइमेहिं, पुप्फेहिं पत्तेहि अ पुप्फलेहिं । सुसावयाणं करणिज्जमेअं, कयं तु जम्हा भरहाहिवेणं ॥ १४७ ॥ तं अत्थं तं च सामत्थं, तं च विन्नाणमुत्तमं । साहम्मिआण कज्जंमि, जं वच्चंति सुसावया ॥ १४८ ॥ होइ समत्थो धम्मं, कुणमाणो जो न बीहए परेसिं । माइपिइसामिगुरु,-भाइआण धम्माण भिन्नाणं ॥ १४९ ॥ चंदो १ चंदो २ अभिवड्ढिओ ३ अ चंद ४ मभिवड्ढिओ चेव । पंचसहिअं जुगमिणं, दिट्ठं तेलुक्कदंसीहिं ॥ १५० ॥ कम्माइं नूणं घणचिक्कणाइं गरुआइं वज्जसाराइं । नाणड्ढियंपि पुरुसं, पंथाओ उप्पहं निंति ॥ १५१ ॥ चउदसपुव्वी १ आहारगा य २ मणनाणि ३ वीयरागा य ४ । तज्जम्माऽनंतरए, नरए निवडंति परिवडिआ ॥ १५२ ॥

[श्रीपार्श्वनाथगणधरचरित्रे ॥]

कालंमि अणाईए, अणाइदोसेहिं वासिए जीवे । जं पाविज्ज गुणोवि हु, तं मन्नह भो महच्छरिअं ॥ १५३ ॥ नायगंमि हए संते, जह सेणा विणस्सइ । एवं कम्मा विणस्संति, मोहणिज्जे खयं गए ॥ १५४ ॥ सावज्जऽणवज्जाणं, वयणाणं जो न याणइ विसेसं । वोत्तुंपि तस्स न खमं, किमंग पुण देसणं काउं ॥ १५५ ॥ घर १ जिणहर २ जिणपूआ ३, वावारच्चायओ निसीहितिगं । अग्गदारे १ मज्झे २, तइआ चिइवंदणा समए ॥ १५६ ॥

[चैत्यवन्दनकभाष्ये गा० ८ ॥]

१–**महापुरुषचरिते** उक्तम्—आगामि दुःषमसुषमायाः वर्षं ३ मास ८ पक्ष १ अतिक्रमेण–**चित्तसिअतेरसीए, चंदे हत्थुत्तराइ जोगेणं । जायहिति पउमनाहोऽभिसेआईवि वीरुव्व ॥ १ ॥** ततः शेषकल्याणकानि वीरवद्भावनीयानि । २–**ओहो०** 'ओहो' इत्यत्र प्रथमा तृतीयार्थे तत ओघेन–सामान्येन 'श्रुते' **पिण्डनिर्युक्त्यादि**रूपे आगमे उपयुक्तः सन् तदनुसारेण कल्प्याकल्प्यं परिभावयन् श्रुतज्ञानी यद्यपि कथमपि अशुद्धं गृह्णाति, तथापि तत् '**केवल्यपि**' केवलज्ञान्यपि भुङ्क्ते, इतरथा श्रुतज्ञानमप्रमाणं भवेत्, तथाहि–छद्मस्थः श्रुतज्ञानबलेन शुद्धं गवेषयितुमीष्टे न प्रकारान्तरेण, ततो यदि केवली श्रुतज्ञानिना यथाऽऽगमं गवेषितमपि अशुद्धमिति कृत्वा न भुञ्जीत ततः श्रुतेऽनाश्वासः स्यादिति, न कोऽपि श्रुतं प्रमाणत्वेन प्रतिपद्येत, श्रुतज्ञानस्य चाप्रामाण्ये सर्वक्रियाविलोपप्रसङ्गः, श्रुतमन्तरेण छद्मस्थानां क्रियाकाण्डस्य परिज्ञानाऽसंभवात् । **पिण्डनिर्युक्तिवृत्तौ मलयगिरिकृ**तायां १४७ पत्रे ॥

"Aho Shrut Gyanam"

भाविज्ज अवत्थतिअं, पिंडत्थ १ पयत्थ २ रूवरहिअत्तं ३ । छउमत्थ ४ केवलित्तं ५, सिद्धत्तं चेव ६ तस्सत्थो ॥ १५७ ॥ न्हवणच्चगेहिं छउमत्थ १ वत्थपडिहारगेहिं केवलिअं २ । पलियं कुसग्गेहि य, जिणस्स भाविज्ज सिद्धत्तं ॥ १५८ ॥ सच्चित्तदव्वमुज्झण, १ मच्चित्तमणुज्झणं २ मणेगत्तं ३ । इगसाडि-उत्तरासंगं ४, अंजली ५ सिरसि जिणदिट्ठे ॥ १५९ ॥ इअ पंचविहाभिगमो, अहवा मुच्चंति रायचिन्हाई । खग्गं १ छत्तो २ वाणह ३, मउडं ४ चमरे ५ अ पंचमए ॥ १६० ॥ वंदंति जिणे दाहिण, दिसिट्ठिआ पुरुस वामदिसि नारी । नवकर जहन्न १ सट्ठिकर जिट्ठ २ मज्झुग्गहो सेसो ॥ १६१ ॥

[चैत्यवंदनभाष्ये गा० ११-१२-२०-२२ ॥]

नमु १ जेय अ २ अरिहं ३ लोग ४ सव्व ५ पुक्ख ६ तम ७ सिद्ध ८ जो देवा ९ । उज्जिं १० चत्ता ११ वेआवच्चग १२ अहिगारपढमपया ॥ १६२ ॥ पढमहिगारे वंदे, भावजिणे बीयअंमि दव्वजिणे २ । इगचेइअ ठवणजिणे ३, तइय-चउत्थंमि नामजिणे ॥ १६३ ॥ तिहुअणठवणजिणे पुण, पंचमए विहरमाणजिण छट्ठे । सत्तमए सुअनाणं ७, अट्ठमए सव्वसिद्ध-थुई ८ ॥ १६४ ॥ तित्थाहिव वीरथुई, नवमे ९ दसमे य उज्जयंत थुई । अट्ठावयाइ इगदसि ११, सुदिट्ठि सुर समरणा चरमे १२ ॥ १६५ ॥

[चैत्यवन्दनभाष्ये गा० ४२-४५ ॥]

चउहाहारं तु नमो, रत्तिंपि मुणीण सेस तिअ चउहा । निसि १ पोरिसि २ पुरिमे ३ गासणाइ ४ सड्ढाण दु ति चउहा ॥ १६६ ॥

[प्रत्याख्यानभाष्ये ॥]

जंणवय[1] १ संमय २ ठवणा ३, नामे ४ रूवे ५ पडुच्चसच्चे अ ६ । ववहार ७ भाव ८ जोगे ९, दसमे ओवम्मसच्चे १० अ ॥ २६७ ॥

[प्रवचनसूत्रे प्रश्नव्याकरणसूत्रे च ॥]

वयणतिअं ३ लिंगतिअं ६, कालतिअं ९ तह परोक्ख १० पच्चक्खं ११ । उवणीयाइचउक्कं[2] १५, अज्झत्थं १६ चेव सोलसमं ॥ १६८ ॥

[प्रश्नव्याकरणवृत्तौ ११८ ॥]

दंसण (निरतिचारतया) १ वय २ सामाइय (सन्ध्यासु) ३, पोसह (पर्वदिने) ४ पडिमा[3] ५ अबंभ (रात्रावपि) ६ सच्चित्ते ७ । आरंभ[4] ८ पेस ९ उद्दिट्ठवज्जए १० समणभूए य (खुरमुंडो लोएण वा रयहरणं घेत्तूणं) ११ ॥ १६९ ॥ मासाई सत्तंता ७, पढमा ८ बिअ ९ तिय १० सत्त राइदिणा । अहराइ ११ एगराई १२, भिक्खुपडिमाण बारसगं ॥ १७० ॥ पडिसेहण संठाणे ५ वण्णे

१-**'जण०'** कोंकणादिषु उदकस्य पयः १, **'सं०'** समानेऽपि पङ्कसंभवे अरविन्दमेव पङ्कजं न कुवलयादि २, **'ठ०'** स्थापनादि सत्यं जिनप्रतिमादिषु जिनव्यपदेशः ३, **'ना०'** कुलमवर्द्धयन्नपि कुलवर्द्धनः ४, **'रू०'** भावतोऽश्रमणोऽपि तद्रूपधारी श्रमणः ५, **'प०'** अनामिका कनिष्ठिकां प्रतीत्य दीर्घा सैव मध्यमां प्रतीत्य ह्रस्वा ६, **'व०'** गिरिगततृणादिषु दह्यमानेषु गिरिर्दह्यते ७, **'भा०'** सत्यपि पञ्चवर्णत्वे शुक्लवर्णाधिक्यात् शुक्ला बलाकेति ८, **'जो०'** दण्डयोगात् दंड इति ९, **'औपम्यसत्यं०'** यथा समुद्रवत्तडागः १० ॥ २-**'उपनीतगुण'**-यथा-रूपवानयम् १, **'अपनीतं'**-यथा-दुःशीलोऽयम् २, **'उपनीतापनीतं'**-यथा-रूपवानयं किन्तु दुःशीलः इति ३, **'अपनीतोपनीतं'**-यथा-दुःशीलोऽयं किन्तु रूपवान् ४ । ३-अष्टमीचतुर्दशीसु एकरात्रिकी प्रतिमा, **उद्दिट्ठ कडं भुत्तंपि वज्जए किमु अ से समारंभो सो होइ उ खुरमुंडो, सिहलिंदा धारए कोवि ॥ १ ॥** सार्द्धपञ्चवर्षाणि लगंति ११ प्रतिमावहने, अब्रह्मादिषु पञ्चसु पदेषु वर्जकशब्दो योजनीयः ॥ माससंख्या भोजनपानयोर्दत्तयः सप्तसु, अष्टमीनवमीदशमीषु अपानकं चतुर्थं तपः, एकादश्यां षष्ठं तपो द्वादश्यां अष्टमं तपः । असणाण वियडभोई अस्नातो **प्राशुक**भोजी वा इत्यर्थः, मउलिकडो मुत्कलकच्छ इत्यर्थः दिवसबंभयारी य राइं परिमाणकडो पडिमावज्जेसु दिवसेसु-प्रतिमावार्जितदिनेषु एवं ज्ञेयः ॥ ४-आरंभ ८ पेस ९ स्वयमकुर्वन्नपि अन्यैः कारयेत् प्रैष्यैरपि न कारयेत् ॥

"Aho Shrut Gyanam"

१० गंध २ १२ रस ५ १७ फास ८ २५ वेए अ ३ २८ । पण पण दु पणट्ठ तिहा, ३ इगतीस अकाय (अकायपणुं) २९ ऽसंग (असंगपणुं) ३० ऽरुहा (अजन्मपणुं) ३१ ॥ १७१ ॥

[प्रश्नव्याकरणवृत्तौ १४३ ॥]

नव दरसणंमि चत्तारि आउए पंच आइमे अंते । सेसे [1]दो दो भेआ, खीणऽभिलावेण इगतीसं ॥ १७२ ॥ वेअण १ वेआवच्चे २ इरिअट्ठाए अ ३ संजमट्ठाए ४ । तह पाणवत्तियाए ५ छट्ठं पुण धम्मचिंताए ६ ॥ नत्थि छुहाए सरिसा, वेयणा भुंजेज्ज तप्पसमणट्ठा । छुहिओ वेयावच्चं, न तरइ काउं तओ भुंजे ॥ १ ॥ ईरिअं नऽवि सोहिज्जा, पेहाईअं च संजमं काउं । थामो वा परिहयइ, गुणऽणुप्पेहासुइ असत्तो ॥ २ ॥ १७३ ॥ जंपि वत्थं व पायं वा, कंबलं पायपुंछणं । तंपि संजमलज्जट्ठा, धारिंति परिहरंति अ ॥ १७४ ॥ न सो परिग्गहो वुत्तो, नायपुत्तेण ताइणा । मुच्छा परिग्गहो वुत्तो, इअ वुत्तं महेसिणा ॥ १७५ ॥ सूपो १ दणे जवण्णं ३, [3]तिन्नि अ मंसाइं ६ गोरसो ७ जूसो ८ । भक्खा ९ गुललावणिया १०, मूलफला हरिअगं १२ डागो १३ ॥ १७६ ॥ होइ [4]रसोलुअ १४ तहा, पाणं १५ पाणीअ १६ पाणगं चेव १७ । अट्ठारसमो सागो १८, निहअओ (निरूवहतो) लोइओ पिंडो ॥ १७७ ॥ हत्थसयादागंतुं, गंतुं च मुहुत्तगं जहिं चिट्ठे । पंथे वा वचंतो, नइसंतरणे पडिक्कमणं ॥ १७८ ॥

[इति आवश्यकनिर्युक्तौ ॥]

अनिआणो दारमणो, हरिसवसविसट्टकंचुयकरालो । पूएइ गुरुसंघं, साहम्मिअमाइ भत्तीए ॥ १७९ ॥ निअदव्वमपुव्वजिणिंदभवणजिणबिंबवरपइट्ठासु । विअरइ पसत्थपोत्थय,-सुतित्थतित्थयरपूआसु ॥ १८० ॥

[इति श्रीभक्तप्रकीर्णके ॥]

जिणाऽऽणाए कुणंताणं, नूणं निव्वाणकारणं । सुंदरंपि सुबुद्धीए, सव्वं भवनिबंधणं ॥ १८१ ॥ जह सरणमुवगयाणं, जीवाण निकित्तई सिरे जो उ । एवं आयरिओ वि हु, उस्सुत्तं पन्नवंतो अ ॥ १८२ ॥ उस्सुत्तभासगाणं, बोहीनासो अणंतसंसारो । पाणच्चएवि धीरा, उस्सुत्तं नेव भासंति ॥ १८३ ॥ पयअक्खरंपि इक्कं, जो न रोएइ सुत्तनिद्दिट्ठं । सेसं रोयंतोऽवि हु, सुत्तत्थं मिच्छदिट्ठीओ ॥ १८४ ॥ उस्सग्गो अववायं, आयरमाणो विराहओ होइ । अववाए पुणपत्ते, उस्सग्गनिसेवओ भइओ ॥ १८५ ॥ संथरणंमि असुद्धं, दोण्हवि गिण्हंतदिंतयाणऽहिअं । आउरदिट्ठंतेणं, तं चेव हिअं असंथरणे ॥ १८६ ॥ तित्थगरा [6]१ जिण २ चउदस ३, दस भिन्ने ४ संविग्ग ५ तह असंविग्गे ६ । सारूविअ ७ वय ८ दंसण ९, पडिमाओ १० भावगामो अ ११ ॥ १८७ ॥

[एषा गाथा श्रीबृहत्कल्पे पृ. ॥ ३४९।४७८ ॥]

१–सातावेदनी, असातावेदनी, चारित्रावरणी, दर्शनावरणी, शुभनामकर्म, अशुभनामकर्म, उच्चैर्गोत्रः नीचैर्गोत्रः एवं भेद ८ सर्वमीलने ३१ । २–**पञ्चवस्तुकेऽपि पिण्डनिर्युक्तावपि** पृष्ठे १७६ गा. ६६२–६६३–६६४ ॥ ३–'**तिन्नि**' जलचरादिसत्कानि, '**जूसो**'त्ति मुद्गतंडुलजीरकटुभाण्डादिरसः, '**भक्ख०**'त्ति खण्डखाद्यादीनि, '**गुललावणिया**' गुडपर्पटिका लोकप्रसिद्धा गुडधाना वा, '**मूलफलानि**' एकमेव पदम्, **हरि०** जीरकादि हरितं '**डागो**'त्ति वस्तुलादिभर्जिकादिः ॥ ४–'**रसोलू**'त्ति मद्यका । '**पाणं**'ति मद्यं, '**पाणिअ**'त्ति जलं, **पाणगं**'त्ति द्राक्षापानकादि, '**सागो**'त्ति तत्र सिद्धशाक इति, एते १८ भक्ष्यं भोजनमिति ॥ ५–आहारे संस्तृते सति । ६–तीर्थङ्कराः १, सामान्यकेवलिनः, २, चतुर्दशपूर्वधराः ३, भिन्न दशपूर्वधरः ४, शुद्धचारित्री ५, असंविग्नचारित्री ६, '**सारू०**' वेषधरमात्रलिङ्गी, ७, १२ व्रतधारकः ८, '**दं०**' केवलसम्यक्त्वधारी ९, '**प०**' जिन बिम्बम् १०, एतद्दशदर्शनं भव्यानां भावग्रामः ज्ञानादिलाभहेतुरार्द्रकुमारवत् । ननु तीर्थङ्करादीनां भावग्रामत्वं युक्तं परं असंविग्नादीनां कथं भावग्रामत्वम् ? उच्यते–तेषामपि सत्यप्ररूपणाकारिणां पार्श्वे धर्ममाकर्ण्य सम्यग्दर्शनाभिलाषः स्यादिति तेषामपि भावग्रामत्वमुक्तम्, इति **बृहत्कल्पवृत्तौ** ॥

"Aho Shrut Gyanam"

लूँआ कोलिगजालग १, कोत्थलकारीअ २ उवरि गेहे अ । साडिंतमसाडिंते, लहुगा गुरुगा अभत्तीए ॥ १८८ ॥

[एषाऽपि गाथा श्रीबृहत्कल्पे पृ. ५२७ ॥]

ओआो १ जोवण २ वणिए ३, अगणि ४ कुडुंबी ५ कुकम्म ६ कुमरीए ७ । तेणे ८ मालागारे ९, उब्भामिग १० पंथिए ११ जंते १२ ॥ १८९ ॥ सव्वेहिंपि जिणेहिं, निज्जिअजिअरागदोसमोहेहिं । सत्ताणुकंपणट्ठा, दाणं न कहिंचि पडिसिद्धं ॥ १९० ॥

सेकिंतं खेत्तारिआ ? खेत्ता० अद्धछव्वीसविहा पन्नत्ता, तंजहा–

रायगिह–मगह १ चंपा अंगा २ तह तामलित्ति बंगा य ३ । कंचणपुरं कलिंगा ४, वाणारसि चेव कासी अ ५ ॥ १९१ ॥ साकेअं कोसला ६ गयपुरं च कुरु ७ सोरिअं कुसट्टा य ८ ॥ १९२ ॥ कंपिल्लं पंचाला ९, अहिछत्ता जंगला चेव १० ॥ १९२ ॥ बारवई सोरट्ठा ११, मिहिल विदेहा य १२ वच्छ कोसंबी १३ । नंदिपुरं संडिल्ला १४, भद्दिलपुरमेव मलया य १५ ॥ १९३ ॥ वइराडमच्छ १६ वरूणा अच्छा १७ तह मत्तिआवइ दसण्णा १८ । सोत्तिअमई अ चेई १९, वीयभयं सिंधु सोवीरे २० ॥ १९४ ॥ महुराय सूरसेणे २१, पावा भंगीय २२ मासपुरि वट्टा २३ । सावत्थीअ कुलाणे २४, कोडीवरिसं च लाडाय २५ ॥ १९५ ॥ सेअविआविअ नयरी, केअयअद्धं च आरिअं भणिअं । जत्थुप्पत्ति जिणाणं चक्कीणं रामकण्हाणं ॥ १९६ ॥ जह पारओ तह गणी, जह मरुगा एगगच्छरासीओ । सुणगसरिसा पलंबा, मडुओ समं दगमफासुं ॥ १९७ ॥

अथ ध्यातुः स्वरूपं श्लोकद्वयेनाऽऽह–

निष्प्रकम्पं विधायाऽथ, दृढं पर्यङ्कमासनम् । नासाग्रदत्तसन्नेत्रः, किञ्चिदुन्मीलितेक्षणः ॥ १९८ ॥ विकल्पवागुराजालाद्दूरोत्सारितमानसः । संसारच्छेदनोत्साहो, योगीन्द्रो ध्यातुमर्हति ॥ १९९ ॥

अथ प्राणायाममाह–

अपानद्वारमार्गेण, निस्सरन्तं यथेच्छया । निरुध्योर्ध्वप्रचाराप्तिं, प्रापयत्यनिलं मुनिः ॥ २०० ॥

१–असंमार्ज्यमाणे चैत्ये भगवत्प्रतिमाया उपरिष्ठात् यदि एतानि भवेयुस्तदा तानि साधुरपि चैत्यभक्त्या दूरीकुर्यात्तदा तस्य चत्वारि लघुप्रायश्चित्तानि आलोचनायामायान्ति, अथ नो दूरीकुर्यात्तानि तदा चत्वारि गुरुप्रायश्चित्तानि आयान्ति, तानि कानि ? इत्याह–लूता नाम कोलिकपुटकानि, कोलिकजालकानि तु कोलकानां तु लालातन्तुसंतानाः कोत्थलकारी–भ्रमरी तस्याः सम्बन्धि गृहं कथ्यते ॥ २–**'आओ'** इति गाथा, व्याख्या–पौरुष्यनन्तरं प्रातर्यावत् साधूनां बाढं वदतामेते द्वादश दोषा भवन्ति–शब्दं श्रुत्वा लोको विबुध्यते, विबुद्धः सन् अप्काययन्त्राणि योजयन्ते, वाहनानि सज्जयन्ते, जलार्थं योषितो यान्ति १, **'जोवण'** त्ति धान्यप्रकरः तदर्थं लोको याति, लाटदेशे 'जोवणं' धान्यनिकरः कथ्यते २, **'वणिए'** त्ति वणिजो विभातमिति कृत्वा व्रजन्ति ३, **'अगणि'** त्ति लोहकरादिभिः शालादिषु अग्निः प्रज्वाल्यते ४, **'कु०'** कुटुम्बिनः स्वकर्म्मसु लगन्ति ५, कुत्सितं कर्म्म येषां ते कुकर्म्मिणो मत्स्यिकादयः ६, 'कु०' कुत्सिता माराः कुमाराः सौकरिकादयस्तेषां विबोधो भवेत् ७, **'ते'** चोराणां बोधः ८, **'मा'** मालिकानां बोधः ९, **'उ०'** उद्भ्रासिकाः पारदारिका विबुध्यन्ते १०, **'प०'** पथिकाः पथि वर्त्तन्ते ११, **जं०** यान्त्रिकाः घाणी-कोल्हू-घरट्ट-चक्रादियन्त्राणि वाहयन्ति १२, इति तर्हि कथं वदन्ति यथा वृद्धा अदन्ता लपनश्रियमश्नन्ति, अशब्दं तत्रापि वदेत् ॥ ३–वैराटदेशः मत्स्यानगरी, अन्ये मत्स्यो देशः वैराटपुरम् १, वरणानगरी अच्छादेशः, अन्ये वैपरीत्यमाहुः ॥ ४–केयद्धदेशोऽर्द्धो ज्ञेयः आर्यैः, अर्द्धश्च अनार्यैः, तत्र श्वेताम्बिका आर्यदेशेऽस्ति, प्रज्ञापनाप्रथमपदे ॥ ५–**'जह०'** यथा पारगो वेदपारगः अपरिणामकः १, परिणामकब्राह्मणः २, अविपरिणामकः ३, एवं सर्वे चौरैर्मुषितामा रोदि न क्षुधाबाधिताः संजाताः यथा मृतश्वा भक्षितः, समृतकं जलं न पीतं, तथा गणयो महात्मानः पलम्बभक्षणम् अप्राशुकजलपानं न कुर्वन्ति ॥ ६–अशुभा वा शुभा वापि विकल्पा यस्य चेतसि ॥ स स्वं बध्नाति अयःस्वर्णो बन्धनामेन कर्म्मणा ॥

"Aho Shrut Gyanam"

अथ पूरकप्राणायाममाह–

[1]द्वादशाङ्गुलपर्यन्तं, समाकृष्य समीरणम् । पूरयत्यतियत्नेन, पूरकध्यानयोगतः ॥ २०१ ॥ नासान्तनभसो ऽष्ठ्यं हि द्व्य ब्धि संख्याङ्गुलोत्तरा । तेजो–वायु–पृथिव्यम्बु ४ बहिर्गतेरुदाहृता ॥ २०२ ॥

अथ रेचकप्राणायाममाह–

निस्सार्यते ततो यत्नान्नाभिपद्मोदराच्छनैः । योगिना योगसामर्थ्याद्, रेचकाख्यः प्रभञ्जनः ॥ २०३ ॥

अथ कुम्भकध्यानमाह–

कुम्भवत् कुम्भकं योगी, श्वसनं नाभिपङ्कजे । कुम्भकध्यानयोगेन, सुस्थिरं कुरुते क्षणम् ॥२०४॥

अथ पवनजयेन मनोजयमाह–

इत्येवं गन्धवाहानामाऽकुञ्चनविनिर्गमौ । संसाध्य निश्चलं धत्ते, चित्तमेकाग्रचिन्तने ॥ २०५ ॥ [2]दुग्धाम्बुवत्संमिलितौ सदैव, तुल्यक्रियौ मानसमारुतौ हि । यावन्मनस्तत्र मरुत्प्रवृत्तिर्यावन्मरुत्तत्र मनःप्रवृत्तिः ॥ २०६ ॥ तत्रैकनाशादपरस्य नाशः, एकप्रवृत्तेरपरप्रवृत्तिः । विध्वस्तयोरिन्द्रियवर्गशुद्धि,-स्तद्ध्वंसनान्मोक्षपदस्य सिद्धिः ॥ २०७॥ [3]निच्छयओ दुन्नेअं, को भावे कम्मि वट्टई समणो । ववहारओ अ कीरइ, जो पुव्वट्ठिओ चरित्तंमि ॥ २०८ ॥

[इति श्रीआवश्यकनिर्युक्तौ भाष्यकारोऽप्याह (२६९) ॥]

[4]ववहारोऽवि हु बलवं, जं छउमत्थं पि वंदई अरिहा । जा होइ अणाभिन्नो, जाणंतो धम्मयं एअं ॥ २०९ ॥

गुणाहिए वंदणयं, छउमत्थो गुणागुणे अयाणंतो । वंदिज्जा व गुणहीणं, गुणाहिअं वावि वंदावे ॥ २१० ॥

उत्तरमाह–

[5]आलएणं १ विहारेणं २, ठाणा ३ चंकमणेण य ४ । सक्को सुविहिओ नाउं, भासा ५ वेणइएण य ॥ २११ ॥ [6]मायरं १ पियरं २ वावि, जेट्ठगं वावि भायरं ३ । किइकम्मं न कारिज्जा, सव्वे रायणिए तहा ॥ २१२ ॥

[आवश्यकनिर्युक्तौ पृ० ५४० ॥]

१–वारुणमण्डलप्रचारावसरेऽमृतमयं बहिस्तात् ४ अङ्गुल, ६ अङ्गुल, ८ अङ्गुल, १२ अङ्गुल । २–यत्र मनस्तत्र पवनो यत्र पवनस्तत्र मनो वर्त्तते यदाह–'दुग्धे०' ति ॥ ३–निश्चयतो दुर्ज्ञेयं को भावे कस्मिन् प्रशस्ते अप्रशस्ते वा वर्त्तते श्रमण इति भावश्चेह ज्येष्ठः ततः अनतिशयिनः वन्दनकाभावः एव प्राप्तः इत्यतो विधिमभिधित्सुराह–व्यवहारस्तु क्रियते वन्दनं यतः पूर्वं स्थितश्चारित्रे यः प्रथमं प्रव्रजितः सन्नुपलब्धातिचारः इति गाथार्थः ॥ २०८ ॥ आह–सम्यक् तद्गतभावाऽपरिज्ञाने सति किमित्येतदेवमित्युच्यते व्यवहारप्रामाण्यात्तस्यापि च बलवत्त्वादाह भाष्यकारः ॥ ४–व्यवहारोऽपि बलवानेव यद्यस्मात्कारणात् छद्मस्थमपि पूर्वरत्नाधिकं गुर्वादिकं वदन्ते, अर्हन्नपि केवल्यपि, अपिशब्दोऽत्रापि संबध्यते, किं सदा नेत्याह–जा होइ अणाभिन्नत्ति यावत् भवति अनभिज्ञातो यथाऽयं केवलीति, किमिति वन्दते ? इत्याह–जानन् धर्म्मतां एतां व्यवहारबलातिशयलक्षणामिति गाथार्थः ॥ २०९ ॥ ५–इत्थं नोदकेनोक्ते सति व्यवहारनयमतमधिकृत्य गुणाधिकत्वपरिज्ञानकरणानि प्रतिपादयन्नाचार्य आह–'आलए०' आलयः वसतिः सुप्रमार्जितादिलक्षणा अथवा स्त्रीपशुपण्डकवर्जितेति तेनाऽऽलयेन नागुणवत एवंविधः खलु आलयो भवति, विहारो मासकल्पादिकस्तेन विहारेण स्थानमूर्द्धस्थानं चङ्क्रमणं गमनं चेत्येकवद्भावस्ते नमन्तः आविरुद्धदेशकायोत्सर्गकरणेन च युगमात्रावनिप्रलोकनपुरस्सराद्भुतगमने चेत्यर्थः शक्यः सुविहितो ज्ञातुं भाषा वैनयिकेन च, विनय एव वैनयिकं समालोच्य भाषणेन आचार्यादिविनयकरणेन चेति भावना, नैतान्येवम्भूतानि प्रायशोऽसुविहितानां भवन्तीति गाथार्थः ॥ २११ ॥ ६–'माय०' मातरं पितरं वापि ज्येष्ठं वा भ्रातरम्, अपिशब्दान्मातामहपितामहादिपरिग्रहः, कृतिकर्म्म-अभ्युत्थितवन्दनमित्यर्थः न कारयेत् सर्वान् रत्नाधिकांस्तथा पर्यायज्येष्ठानित्यर्थः । किमिति मात्रादीन् वन्दनं कारयतः लोकगर्होपजायते, तेषां च कदाचिद्विपरिणामो भवति आलोचनप्रत्याख्यानसूत्रार्थं तु कारयेत्, सागारिकाध्यक्षं तु यतनया कारयेत्, एष प्रव्रज्याप्रतिपन्नानां विधिः, गृहस्थानां तु कारयेदिति गाथार्थः ॥ २१२ ॥

"Aho Shrut Gyanam"

जइ किंचि दप्पओ अणमप्पप्पं वावि सेसियं वत्थुं । पच्चक्खेज्जण दोसो, सयंभुरमणाइमत्थु व्व ॥ २१३ ॥ जो वा णिक्खमिओ मणो, पडिमं पुत्ताइसंतइनिमित्तं । पडिवज्जेज्जा तओ वा, करेज्ज तिविहंपि तिविहेणं ॥ २१४ ॥ तसाइजीवरहिए, भूमीभागे विसुद्धए । फासुएणं तु नीरेणं, इयरेणं गलिएण उ ॥ २१५ ॥

[श्राद्धदिनकृत्ये गाथा २३ ॥]

काऊणं विहिणा ण्हाणं सेअवत्थनियंसणो । मुहकोसं तु काऊणं गिहिबिंबाणि पमज्जए ॥ २१६ ॥

[श्राद्धदिनकृत्ये गाथा २४ ।]

वण्णगंधोवमेहिं च, पुप्फेहिं पवरेहि य । नाणापयारवंधेहिं, कुज्जा पूअं विअक्खणो ॥ २१७ ॥

[श्राद्धदिनकृत्ये गाथा ६३ ।]

कारण अत्थि जइ किंचि, कायव्वं जिणमन्दिरे । तओ सामाइअं मोत्तुं, करेज्ज करणिज्जयं ॥२१८॥

[श्राद्धदिनकृत्ये गाथा ७९ ।]

[2]जीवाण बोहिलाभो, सम्मद्दिट्ठीण होइ पिअकरणं । आणाजिणिंदभत्ती, तित्थस्स पभावणा चेव ॥ २१९ ॥

[श्राद्धदिनकृत्यवृत्तौ ॥]

रिउसमयण्हायनारी, नरोवभोगेण गब्भसंभूई । बारसमुहुत्तमज्झे, जायइ उवरिं पुणो नेव ॥ २२० ॥ पणपन्नाइ परेणं, जोणी पमिलायए महिलियाणं । पणहुत्तरीइ परओ, होइ अबीओ नरो पायं ॥ २२१ ॥ दुप्पडिलेहिअ दूसं, अद्धाणाई विवत्त गिण्हंति । घिप्पइ पु[3]त्थयपणगं, कालिअनिज्जुत्ति कोसट्ठो ॥ २२२ ॥ जइ तेसिं जीवाणं, तत्थगयाणं तु सोणिअं हुज्जा । पीलिज्जंते धणिअं, गलिज्ज तं अक्खरे फुसिअं ॥ २२३ ॥ आमे घडे निहित्तं, जहा जलं तं घडं विणासेइ । इअसिद्धंतरहस्सं, अप्पाहारं विणासेइ ॥ २२४ ॥

[आवश्यकेऽपि ॥]

[3]पुरिमंतिम अट्ठट्ठंतरेसु तित्थस्स नत्थि वुच्छेओ । मज्झिल्लएसु सत्तसु, इत्तिअकालं च [1] वुच्छेओ ॥ २२५ ॥ चउभागो चउभागो, तिन्नि अ चउभाग पलिअचउभागो । तिन्नेव य चउभागा, चउत्थभागो अ चउभागो ॥ २२६ ॥ समओ जहन्नमंतरमुक्कोसेणं हवंति छम्मासा । आहारसरीराणं, उक्कोसेणं नवसहस्सा ॥ २२७ ॥ उस्सेइम १ संसेइम २, तंदुल ३ तिल ४ तुस ५ जवोदगा ६ ऽऽयामं ७ । सोवीरं ८ सुद्धविअडं, ९ अंबव १० अंबाडय ११ कविट्ठं १२ ॥२२८॥ माउलिंग १३ दक्ख । १४ दाडिम १५, खज्जुर १६ नालियर १७ कयर १८ बदरफलं १९ । आमलयं २० चिंचापाणगाइं च २१ पढमंगभणियाइं ॥ २२९ ॥ अंडयं १ पोअय २ रसया ३, जराउ ४ संसे-

१–तीर्थस्य चतुर्विधस्य सङ्घस्य ॥ कालिकश्रुतस्य द्वादशाङ्गीरूपस्य दृष्टिवादस्तु सर्वान्तरेष्वपि व्यवच्छिन्नः कथिरिकियन्तमपि कालं व्यवच्छिन्नो दृष्टिवादा इति । २–अर्हद्धर्मवार्त्तापि तत्र नष्टेत्यर्थः । ३–**मेहावग्गहधारणादि परिहाणिं जाणिऊण कालियसुयट्ठा कालियसुअनिज्जुतिनिमित्तं वा पोत्थगं घिप्पइ । 'कोसो'त्ति समुदओ । निशीथे १२ उद्देशके** ॥ ३–सुविधि ९ शीतल १०, १०।११[2] अन्तरे पल्योपमभा० १, १३।१४[5] अं० पल्यो० भा० ३ ९।१० अन्तरे पल्योपमस्य ११।१२[3] अन्तरे पल्योपमस्य चतुर्थभा० ३ १४।१५[6] अं० पल्यो० भा० १ चतुर्थभागः । १ एकम् १२।१३[4] अन्तरे पल्योपम भा० १ १५।१६[7] अं० पल्यो० भा० १ सर्वान्तरमानं पल्योपम २ चतुर्थभागत्रयं च । ४–अण्डाज्जाता अण्डजाः पक्षिगृहकोकिलकादयः १, पोतादिव जायन्त इति पोतजाः–ते च हस्तिवल्गुलीचर्म्मजलूकप्रभृतयः २, रसाज्जाता रसजाः–आरनाल-दधि-तीमनादिषु पायुकम्याकृतयोऽतिसूक्ष्मा भवन्ति ३, जरायुवेष्टिता जायन्त इति जरायुजाः गोमहिष्यऽजादिकमनुष्यादयः ४, संस्वेदाज्जाता इति संस्वेदजा मत्कुणयूकादयः ५, संमूर्छनाजाताः संमूर्छनजाः शलभपिपीलिकामक्षिकासालूरादयः ६, उद्भेदाज्जन्म येषां ते उद्भेदजाः पतङ्गखञ्जरीटपारिप्लवादयः ७, उपपाताज्जाताः उपपातजाः, उपपातेन वा भवा औपपातिका देवा नारकाश्च ८, इति **दशवैकालिकवृत्तौ** ।

"Aho Shrut Gyanam"

अया ५ समुच्छिमया । उब्भिय ७ तहोऽववाइअ ८, भेएणं अट्ठहा जीवा ॥ २३० ॥ मिच्छत्तं १ वेअतिगं, हासाईछक्कगं च १० नायव्वं । कोहाईण चउक्कं १४, चउदस अब्भिंतरा गंठी ॥ २३१ ॥ जिणकप्पिया य साहू, उक्कोसेणं तु एगवसहीए । सत्त य हवंति कहमवि, अहिआ कइआवि नो हुंति ॥ २३२ ॥ जइ जग्गंति सुविहिआ, करंति आवस्सयं च अन्नत्थ । सिज्जायरो न होई, सुत्ते व कए व से होई ॥ २३३ ॥ अट्टेण तिरिक्खगई, रुद्दज्झाणेण गम्मए नरयं । धम्मेण देवलोए, सिद्धिगई सुक्कझाणेणं ॥ २३४ ॥ कामाणुरंजियं अट्टं १, रोद्दं हिंसाणुरंजियं २ । धम्माणुरंजिअं धम्मं ३, सुक्कज्झाणं निरंजणं ॥ २३५ ॥ जइआ होही पुच्छा, तइआ एअस्स उत्तरं दिज्जा । इक्कस्स निगोअस्स, अणंतभागो गओ सिद्धिं ॥ २३६ ॥ वय ५ समणधम्म १५ संजम ३२, वेआवच्चं ४२ च बंभगुत्तीओ ५१ । नाणाइतियं ५४ तव ६६ कोहनिग्गहाई ७० चेरणमेअं ॥ २३७ ॥ पिंडविसोही ४ समिई ५, भावण १२ पडिमा १२ इंदिय निरोहो ५ । पडिलेहण २५ गुत्तीओ ३, अभिग्गहा ४ चेव करणं तु ॥ २३८ ॥ तिगुणा तिरूव अहिआ, तिरिआणं इत्थिआ मुणेअव्वा । सत्तावीसगुणा पुण, मणुआण सुराण बत्तीसा ॥ २३९ ॥ असढेण समाइन्नं, जं कत्थइ कारणे असावज्जं । न निवारिअमन्नेहिं अ, बहुमणुमयमेअमायरियं ॥ २४० ॥ रुक्खाण जलाहारो संकोअणिआभएण संकुचई । नियतनूहिं वेढइ, वल्ली रुक्खे परिग्गहेणं ॥ २४१ ॥ इत्थिपरिरंभएणं, *कुरुबकतरुणो फलंति मेहुन्ने । तह कोहणस्स कंदो, हुंकारं मुअइ कोहेणं ॥ २५२ ॥ माणे झरइ रुअंती, छायइ वल्ली फलाइ मायाए । लोभे बिल्लपलासा, खिवंति मूले निहाणुवरिं ॥ २४३ ॥ रयणीए संकोओ, कमलाणं होइ लोगसन्नाए । ओहे चइत्तुमग्गं चडंति रुक्खेसु वल्लीओ ॥ २४४ ॥ एगिंदियजीवाणवि, इअ दस सन्ना जिणेहिं पन्नत्ता । नहु हुंति मोह-सुह-दुह, वितिगिच्छा सोगधम्माइ ॥२४५॥ गीअत्थो अ विहारो, बीइओ गीअत्थमिसिओ भणिओ । एत्तो तइअविहारो, नाणुन्नाओ जिणवरेहिं ॥ २४६ ॥

[पञ्चवस्तुके ११८० पृ० १७३ ॥]

गीअं भण्णइ सुत्तं, अत्थो पुण होइ तस्स वक्खाणं । सुत्तेण य अत्थेण य, गीअत्थं तं विआणाहि ॥ २४७ ॥ जो देइ उवस्सयं जइवराण गुणसयसहस्सकलिआणं । तेणं दिन्ना वत्थन्नपाणसयणासणविगप्पा ॥२४८॥ (मिच्छे–१ सासण–२ मीस्से–३ अविरय–४ देसे–५ पमत्त ६ अपमत्ते ७ ।

१–यदि शय्यातरगृहे सुप्त्वा जागरित्वा प्राभातिकं प्रतिक्रमणं कुर्वन्ति तदाऽसौ शय्यातरः । अथैतच्छय्यायां सकलां रात्रिं जागरित्वा प्राभातिकं प्रतिक्रमणमन्यत्र कुर्वन्ति तदा मौलः शय्यातरो न भवति किन्तु यद्गृहे प्रतिक्रमणं कृतं स एव, अथ मूलशय्यायां रात्रौ सुप्त्वाऽन्यत्र प्रातः प्रतिक्रमन्ति तदा मौलोऽन्यश्च द्वावपि शय्यातरौ, यदा तु वसतिसङ्कीर्णतादिकारणादनेकोपाश्रयेषु साधवस्तिष्ठन्ति तदा यत्राचार्यः स्थितः स शय्यातरो नान्यः ॥ २–नित्यानुष्ठानं चरणम् । ३–कार्यापन्नेऽनुष्ठानं करणम् । ४–'**असढेण०**' रागद्वेषरहितेन कालिकाचार्यादिवत् प्रमाणस्थेन सता समाचीर्णम् आचीर्णं यद्भाद्रपदशुद्धचतुर्थीपर्युषणापर्ववत् कुत्रचिद् द्रव्यक्षेत्रकालादौ कारणे पुष्टालम्बने असावद्यं प्रकृत्या मूलोत्तरगुणाराधनाश्च बाधकं न च नैव निवारितमन्यैस्तथाविधैरेव तत्कालवर्त्तिभिर्गीतार्थैः, अपि तु बहु यथा भवत्येवमनुमतमेतदाचीर्णम् । इति कल्पवृत्तौ उद्देश ३ ॥

५–सङ्कोचनिका–हस्तस्पर्शादिभीत्या अवयवसंकोचनात्, **पञ्चवस्तुके** इयं १७६ गाथा, तत्र द्वितीयपदपाठ एव–'**जं कत्थइ केणई असावज्जं**' तत्र व्याख्या—केनचित् प्रमाणस्थेन शेषं तदेव ॥

*–कुरुबकाशोकतिलकादीनां तु कमनीयकामिनी १ भुजलतावगूहन २ पार्ष्णिप्रहारकटाक्षा ३ दिभ्यः प्रसूतपल्लवादिप्रसवदर्शनान्मैथुनसञ्ज्ञा ॥ यथा–स्त्रीणां स्पर्शात्प्रियङ्गुर्विकसति, बकुलः सीधुगण्डूषसेकात्, पादाघातादशोकस्तिलककुरुबकौ वीक्षणालिङ्गनाभ्याम् । मन्दारो नर्मवाक्यान्मृदुमधुहसनाचम्पको वक्त्रवाक्याच्चूतो गीतान्नमेरुर्विकसति पुरतो नर्त्तनात्कर्णिकारः ॥१॥

६–'**नहु**' एकेन्द्रियाणामेताः षट् संज्ञा न भवन्ति । ७–गीतार्थश्च विहारस्तदभेदोपचारात्, द्वितीयो गीतार्थमिश्रितो भणितो विहार एव, अतो विहारद्वयात्तृतीयविहारः–साधुविहरणरूपो नानुज्ञातः जिनवरैर्भगवद्भिः ॥

"Aho Shrut Gyanam"

नियट्टि ८ अनियट्टि ९ सुहुमु १० वसम ११ खीण १२ सजोगि १३ अजोगि गुणा १४ ॥) पावइ सुरनररिद्धी, सुकुलुप्पत्ती य भोगसामिद्धी । नित्थरइ भवमऽगारी, सिज्जादाणेण साहूणं ॥२४९॥ संगमय १ कालसूरी २, कविला ३ अंगार ४ पालया ५ दोवि ६ । नो जीव ७ गुट्ठमाहिल ८, उदाइनिव मारय ९ अभवा ॥२५०॥ ¹उणट्ठिसयसहस्सा, सत्तावीसं भवे सहस्साइं । चत्ताकोडाकोडी वासाणं उसभजिण आउं ॥२५१॥ उस्सेह अंगुलेणं, अह उड्ढमुस्सेह सत्त रयणीओ । तिरिलोए पणधणुसय, ²सासयपडिमा पणिवयामि ॥२५२॥ गोहुम १ साली २ जवजव ३, जवाइ ४ धन्नाण कुट्ठगाईसु । खविआणं उक्कोसं, वरिसतिगं होइ सच्चित्तं ॥ २५३ ॥ तिल १ मुग्ग २ मसूर ३ ³कलाय ४ मास ५ चवलग ६ कुलत्थ ७ तुवरीणं ८ । तह ⁴वट्टचणग ९ वल्लाण १० वरिसपणगं सजीवत्तं ॥ २५४ ॥ अइसी १ ⁵लट्टा२ कंगू ३, कोडीसग ४ सण ५ बरट्ट ६ सिद्धत्था ७ । कुद्दव ८ रालग ९ मूलग, बीआणं १० सत्त वरिसाणं ॥२५५॥ अमित्तो मित्तरूवेण, कंठं घेत्तूण रोअई । मामित्तो सग्गइं जाइ, दोवि गच्छामु दुग्गइं ॥ २५६ ॥ उवएसा दिज्जंति, हत्थे नच्चाविऊण अन्नेसिं । जं अप्पणा न कीरइ, किमेस विक्काणुओ धम्मो ॥ २५७ ॥ सद्देण मिउ रूवेण पयंगओ महुअरो अ गंधेणं । आहारेण य मच्छो, बज्झइ फासेणऽवि गइंदो ॥२५८॥ कत्थवि जीवो बलिओ, कत्थवि कम्माइं हुंति बलिआइं । जीवस्स य कम्मस्स य पुव्वनिबद्धाइ वेराइं ॥२५९॥ राई सरिसवमित्ताणि, परच्छिद्दाणि पाससे । अप्पणो बिल्लमित्ताणि, पासंतोऽवि न पाससे ॥२६०॥ सीसं धुणियं चित्तं, चमक्किअं पुलकिअं च अंगेहिं । तहवि हु परगुणगहणे, खलस्स न हु निग्गया वाणी ॥२६१॥ पंचेंदिआ मणुस्सा, एगथ[स]नर भुत्तनारिगब्भंमि । उक्कोसं नव लक्खा, जायंती एगवेलाए ॥ २६२ ॥ संघाइआण कज्जे, चुण्णिज्जा चक्कवट्टिसिन्नंपि । ⁶तीए लद्धीइ जुओ, लद्धि पुलाओ मुणेयव्वो ॥ २६३ ॥ उत्तमनर १ पंचुत्तर २ तायत्तीसा य ३ पुव्वधर ४ इंदा ५ । केवलिदिक्खिअ ६, सासणदेवी ७ जक्खा य ८ नो अभव्वा ॥ २६४ ॥ अरिहंत १ सिद्धि २ चेइय ३, तव ४ सुअ ५ गुरु ६ साहु ७ संघ ८ पडिणीओ । बंधइ दंसणमोहं, अणंतसंसारिओ जेणं ॥ २६५ ॥ जो जेण सुद्धधम्मंमि ठाविओ संजएण गिहिणा वा । सो चेव तस्स जायइ, धम्मगुरू धम्मदाणाओ ॥ २६६ ॥ आरंभे नत्थि दया, महिलासंगेण नासए बंभं । संकाए सम्मत्तं, पव्वज्जा [दव्व] अत्थगहणेणं ॥ २६७ ॥ गिहिवावारपरिस्सम–खिन्नाण नराण वीसमट्ठाणं । एगाण होइ रमणी, अण्णाण जिणिंदवरधम्मो ॥ २६८ ॥ तुल्लेवि उअरभरणे, मूढ अमूढाण पिच्छसु विवागं । एगाण नरयदुक्खं, अण्णेसिं सासयं सुक्खं ॥ २६९ ॥ जीवंति पुहविपडिआ, भयरवपडिआवि केवि जीवंति । जीवंति खग्गछिन्ना, चट्टु च्छिन्ना न जीवंति ॥ २७० ॥ आवायमित्तगुरुएहिं तह पेरंतलहुअभूएहिं । घंटानिनायसरिसेहिं लज्जिमो लोअपिम्मेहिं ॥ २७१ ॥ नलिणमिणं मलिणमिणं, विरसमिणं गंधवज्जियमिणं च । मालइरत्तो भमरो, परिहरइ विआरिउं कुसुमे ॥ २७२ ॥ अइहासो १ अइतोसो २, अइदुज्जाण–माणुसेहिं संवासो । अइउब्भडो अ वेसो, पंचवि गुरुअस्स लहुअंति ॥ २७३ ॥ कालंमि अणाईए, जीवाणं विविहकम्मवसगाणं ।

१–५९ लाख कोडाकोडी, २७ सहस्र कोडाकोडी, ४० कोडाकोडी, अङ्कतोऽपि यथा–५९२७०४००००००००००॥ ८४ वरसे १ पूर्वाङ्ग (?)' ८४ लाख पूर्वाङ्गे १ पूर्व (२)। ८४ लाख पूर्वे १ त्रुटिताङ्ग (३)। एतलउ आदिनाथ आउखुं गाथोक्त ॥ २–शाश्वतजिनस्तवने वृत्तौ सूत्रेऽपि यथा–पडिमा पुण गुरुआओ, पणधणुसयलहुअसत्तहत्थाओ ॥ ३–कलायः–त्रिपुटाख्यधान्यविशेषः । ४–वट्टचणकाः–शिखारहिता वृत्ताकाराश्चणकविशेषाः ॥ ५–लट्टा–कुसुम्भबीज०, कंगू–तन्दुलाः, कोद्रवविशेषः । शणं त्वप्रधानं बरट्टस्ति 'बरटी' इति प्रसिद्धम् । ६–तस्य हि एतादृशी शक्तिर्यया चक्रवर्तिस्कन्धावारमपि यो गृह्णीयाद्विनाशयेद्वा न प्रायश्चित्तं प्राप्नुयात्, भाष्यवृत्तौ ।

"Aho Shrut Gyanam"

तं नत्थि संविहाणं संसारे जं न संभवई ॥ २७४ ॥ अरिहंतो असमत्थो, तारणे लोआण–दीह-संसारे । मग्गे देसणकुसलो, तरंति जे मग्गि लग्गंति ॥ २७५ ॥ दस पुव्वा वुच्छिन्ना संपुन्ना, सुरभवंमि संपत्ते वइरंमि महासत्ते, संघयणं अद्धनारायं ॥ २७६ ॥ रिसहो १ रिसहस्स सुया ९९, भरहेण विवज्जिआ नवनवई । अट्ठ य भरहस्स सुया, सिद्धा इक्कंमि समयंमि ॥ २७७ ॥ वासाण वीससहस्सा, नवसय तिअमास पंचदिणपहरा । इक्का घडिआ दोपल, अक्खरगुणयाल जिणधम्मो ॥ २७८ ॥ अद्दामलग[य]पमाणे, पुढविकाए हवंति जे जीवा । ते पारेवयमित्ता, जंबुद्दीवे न मायंति ॥ २७९ ॥ एगंमि उदगबिंदुंमि, जे जीवा जिणवरेहिं पन्नत्ता । ते जइ सरिसवमित्ता, जंबुद्दीवे न मायंति ॥ २८० ॥ सोहम्मंमि दिवड्ढा, अड्ढाइज्जा य हुंति माहिंदे । पंचेव सहस्सारे, छ अच्चुय सत्त लोगंते ॥ २८१ ॥ दो कोडाकोडीओ, पणसिय–लक्खा य हुंति कोडीओ । इगुत्तर सहस-कोडी, चउसय कोडीओ नायव्वा ॥ २८२ ॥ अट्ठावीसं कोडी, लक्खा सगवन्न चउदस सहस्सा । दोय सयापणसीया, चवंति देवीओ इंदस्स ॥ २८३ ॥ इह भरहे केवि जीवा, मिच्छद्दिट्ठी य भद्दया भावा । जे मरिऊणं नवमे, वरिसे होहिंति केवलिणो ॥ २८४ ॥

बारसहिं जोयणेहिं, सोअं परिगिण्हए सद्दं । रूवं गिण्हइ चक्खुं, जोअणलक्खाओ साइरेगाओ ॥ गंधं रसं च फासं, जोअणनवगाउ सेसाई ॥ २८५ ॥ पणसयसत्ततीसा, चउत्तीस सहस्स लक्ख इगवीसा पुक्खरदीवड्ढनरा, पुव्वेण अवरेण पिच्छंति ॥ २८६ ॥

[पुष्पमालावृत्तौ ४३४ ॥]

कालतियं, वयणतियं लिंगतियं तह परोक्ख पच्चक्खं । उवणयऽवणयचउक्कं, अज्झत्थं चेव सोलसमं ॥ २८७ ॥

[इति श्रीबृहत्कल्पे; प्रवचनसारे १४० द्वारेऽपि ३६४ पत्रे ॥]

उम्मग्गदेसणाए, चरणं नासिंति जिणवरिंदाणं । वावन्नदंसणा खलु, न लब्भा तारिसा दट्ठुं ॥ २८८ ॥ [आभिग्गहियं–अणभिग्गहियं–तह अभिनिवेसियं चेव । संसइयं अणाभोगं मिच्छत्तं पंचहा एवं] अक्खंडियचारित्तो वयगहणाओ य जो भवे तित्थे । तस्स सगासे दंसण,-वयगहणं तह य सोही य ॥ २८९ ॥ तरिअव्वा य पइन्ना, मरिअव्वं वा समरए समत्थेणं । असरिसजणउल्लावा, न हु सहिअव्वा कुलपसूएणं ॥ २९० ॥ जंबुद्दीवे चक्की, उक्कोसं तीस चउ जहन्नेणं । धायइपुक्खरदुगुणा, एमेव य केसवाईआ ॥ २९१ ॥ एगदिणे जे देवा, चवंति तेसिं पि माणुसा थोवा । कत्तो मे मणुयभवो, इअ चिंताए सुरो दुहिओ ॥ २९२ ॥ जोइ १ वण २ पढमपुढविं नव नागाईओ जंति बीआए । तईयं असुरकुमारा, वेमाणिय जंति सत्तसु वि ॥ २९३ ॥ ते उड्ढमच्चुअं जाव, भवणवई

१–सणीजातिपुष्पं क्वापि वृक्षमुकुरः । २–अप्कायस्य सर्षपप्रमाणभणनेन पृथ्वीतः सूक्ष्मत्वम् । ३–भगवत्यां १४ शतके ८ उद्देशके सिद्धिशिलात उपरि अलोको योजनम् एकं, तत्र इदं योजनं उत्सेधाङ्गुलनिष्पन्नं ज्ञेयं यतस्तस्य योजनस्योपरितनक्रोशस्य षड्भागे सिद्धावगाहना धनुस्त्रिभागयुक्त त्रयस्त्रिंशदधिकधनुः शतत्रयमानाभिहितरूपा उत्सेधाङ्गुलयोजनाश्रयणत एव युज्यत इति । ४–शब्दं–मेघगर्जनाशब्दरूपम् १, चक्षुः सातिरेकयोजनलक्षाद् रूपं गृह्णाति विष्णुकुमारादेरिव खचरणपुरोवर्त्तिगर्त्तान्तर्गतलोष्ठादिदर्शनात्, इदमभास्वरपदार्थापेक्षया भास्वरपदार्थापेक्षया तु पणसये त्ति गाथोक्तं पटुघ्राणादिशक्के देवादिकर्पूरादीनामिव गंधं तिक्तकटुकादिरसं । ५–उपनयः स्तुतिः. अपनयो–निन्दा तयोः चतुष्कम्–उपनयापनयचतुष्कम्, 'रूपवती स्त्री' इति उपनयवचनम् १, 'दुःशीला' इति अपनयवचनं २, 'रूपवती स्त्री किन्तु दुःशीला' इति उपनयापनयवचनम् ३, कुरूपा स्त्री किन्तु सुशीला इति अपनयोपनय० ४, ६–अन्यच्चेतसि निधाय विप्रतारकबुद्ध्या अन्यत् विभणिषुः पुनरपि सहसा यच्चेतसि तदेव वक्ति यत्तत् षोडशमध्यात्मवचनम् । ७–तत्सम्बन्धि स्वयं विनष्टसम्यग्दर्शनाः तादृशा द्रष्टुमपि न कल्पते किं पुनस्तैः समं सहवासादयः ।

"Aho Shrut Gyanam"

जाव जंति सोहम्मे । जोइ वण पंडगवणं, असंखदीवोदहितिरियं तु ॥ २९४ ॥ [दो पढमकप्पपुढविं, दो दो दो बीय-तईय-चउत्थि । चउ उवरिम ओहीए, पासंति य पंचमिं पुढविं ॥१॥ छट्ठिं छग्गेविज्जा, सत्तमिमियरे अणुत्तरसुराओ । किंचूणलोगनालिं, असंखदीवोदहिं तिरियं ॥ २ ॥] मेल्हेइ सोहम्माओ, कोवि सुरो लोहगोलगं हिट्ठा । भारसहस्समयं सो, छम्मासेहिं च छदिणेहिं ॥ २९५ ॥ छप्पहरछघडिआहिं, जावइयं इक्कमिज्ज तावइआ । रज्जू तयद्धमणो, दीवसमुद्दंऽतिमो जेलही ॥ २९६ ॥ पणयालीसं आगम,-समग्ग-गंथाण हुंति छलक्खा । पणयालीस सहस्सा, पंचसया चेव चउयाला ॥२९७॥ संविग्गसंजयाणं, दिज्जइ घिप्पइअ पढमभंगो य । संजइवग्गे दिज्जइ, नवि घिप्पइ कारणे बीओ ॥ २९८ ॥ गिहि १ अन्नतित्थिआणं २, नवि दिज्जइ घिप्पए अ नवरं तु । नवि दिज्जइ नवि घिप्पइ, पासत्थाईसु सव्वेसु ॥ २९९ ॥ सुरलोअवाविमज्झे, मच्छाई नत्थि जलयरा जीवा । गेविज्जे नहु वावी, वाविअभावे जलं नत्थि ॥ ३०० ॥ चेइयदव्वं दुविहं, पूआ १ निम्मल्ल २ भेयओ तत्थ । आयाणाई दव्वं, पूआरित्थं मुणेअव्वं ॥ ३०१ ॥ अक्खयफलबलिवत्थाइ संतिअं जं पुणो दविणजायं । तं निम्मल्लं वुच्चइ, जिणगिहकम्मंमि उवओगो ॥ ३०२ ॥ अह पुव्विं चिअ केणइ, हविज्ज पूआ कया सुविहेण । तंपि सविसेससोहं, जह होइ तहा तहा कुज्जा ॥३०३॥ निम्मल्लंपि न एवं, भण्णइ निम्मल्ललक्खणा भावा । भोगविणट्ठं दव्वं, निम्मल्लं बिंति गीयत्था ॥३०४॥ इत्तो चेव जिणाणं, पुणरवि आरोवणं कुणंतु जहा । वत्थाहरणाईणं, जुगलिअ कुंडलिअमाईणं ॥ ३०५ ॥ कहमन्नह एगाए, कायाईणं जिणिंदपडिमाणं । विजयाई वन्नि अट्ठसयं लूहंताया समए ॥ ३०६ ॥ जे निच्चमप्पमत्ता, गंठिं बंधंति गंठिसहियंमि । अट्ठसयं लूहंता सग्गाऽपवग्गसुक्खं, तेहिं निबद्धं सगंठिंमि ॥३०७॥ भणिऊण नमुक्कारं, निच्चं विम्हरण वज्जिया धन्ना । पारंति गंठिं सहिअं गंठिसह कम्मकंठीहिं ॥ ३०८ ॥ पोरिसि १ चउत्थ २ छट्ठे ३, काउं कम्मं खवंति जं मुणिणो । तं नो नारयजीवा, वाससयसहस्स लक्खेहिं ॥ ३०९ ॥ सत्तरिसयमुक्कोसं, वीस जहन्नेण विहरमाणजिणा । समयखित्ते दस वा जैम्मं पइवीसदसगं वा ॥ ३१० ॥ पायमिह कूरकम्मा, जीवा भवसिद्धियावि दाहिणए । नेरइअतिरिअमणुआ,-सुराइठाणेसु गच्छंति ॥ ३११ ॥ अट्ठ १ दुवालस २ सोलस ३, चउत्तिहारेहिं पउरमट्ठेहिं । दसहिं तिहारा वट्ठे, एगओ होइ उववासो ॥ ३१२ ॥ गिह १ जोइ २ भूसणंगा ३, भोअण ४ भायण ५ तहेव वत्थंगा ६ । चित्तरसा ७ तुडिअंगा ८, कुसुमंगा ९ दीविअंगा य १० ॥ ३१३ ॥ बहुरयणविणिम्माया, भवणदुमा अट्ठभूमिआ दिव्वा । सयणासणसन्निहिआ, तेएण निदाहरविसरिसा ॥३१४॥ जोइदुमाणं उवरिं, ससिसूरा जत्थ वच्चमाणाऽवि । ताणं पभवोऽपहया, निअयंपि छविं विमुंचंति ॥ ३१५ ॥ वरहार कणयकुंडल,-मउडालंकारनेउराईणि । नियअंगभूसणाइं आहरणदुमेसु जायंति ॥ ३१६ ॥ अट्ठसयखज्जयजुओ, चउसट्ठी तह य वंजणविअप्पो । उप्पज्जइ आहारो, भोअणरुक्खेसु रसकलिओ ॥ ३१७ ॥ भिंगारथालवट्टय, कच्चोलयवद्धमाणमाईणं । कंचणरयणमयाइं, जायंति अ भायणंगेसु ॥ ३१८ ॥ खोमदुगुल्लयचालय,-चीणंसुअ पट्टमाइआइं च । वत्थाणि बहुविहाइं वत्थंगदुमा पमाणंति ॥ ३१९ ॥ कायंबरी पसन्ना, आसवजोगा तहेवऽणेग विहा । चित्तंगरसेसु

१–रज्जुर्भवेत् । २–स्वयम्भूरमणसमुद्रः, प्रकारान्तरेण रज्जुप्रमाणमाह । ३–पार्श्वस्थादीनां न दीयते नापि तेभ्यो गृह्यते । ४–महाविदेहेषु जघन्यतः । ५–जन्म आश्रित्य महाविदेहेषु २०, भरतैरावतेषु १० स्युः । ६–त्रुटिताङ्गास्तु–ततविततघनशुषिरभेदभिन्नैर्बहुप्रकारैरातोद्यैः फलैरिव उपशोभितास्तिष्ठन्ति । कुसुमाङ्गास्तु–विचित्रसरससुरभिपञ्चवर्णमाल्यमालाभिराकीर्णाः सदैवासते । दीपिकाङ्गास्तु–यथा इह स्निग्धाः प्रज्वलन्त्यः कनकमणिमय्यो दीपिका उद्योतं कुर्वाणा दृश्यन्ते तद्वद्विश्रसा परिणतप्रकृष्टोद्योतेन सर्वमुद्योतयन्तस्तिष्ठन्ति ॥ ७–विश्रसापरिणामेन ।

"Aho Shrut Gyanam"

सया, पाणयजोगा उ जायंति ॥ ३२० ॥ फालो अचित्तो अह आविओ वा, चउरंगुलं विर्त्थडओ असंधिमं । विस्सामहेउं तु सरीरयस्स, दोसा अवट्ठंभगया न एवं ॥ ३२१ ॥ एक्कं पाउरमाणे, खोमिअं उन्निअं च लहुमासो । दुन्नि अ पाउरमाणे, अंतो खोमी बहिं उन्नी ॥ ३२२ ॥ छप्पइआ पणगरक्खा, भूसा उज्झायणा य परिहरिआ । सीयत्ताणं च कयं, तेण खोमं न बाहिरओ ॥ ३२३ ॥ पँढमचरिमा उ सिसिरे, गिम्हे अद्धं तु तासि वज्जेज्जा । पायं ठवे सिणेहातिरक्खणट्ठा पवेसे वा ॥३२४॥

[श्रावकविधौ पण्डितराजपरमार्हतधनपालेनोक्तम् ॥]

पंचविहविसयसुक्खं, उवभुंजइ परमिएसु दिवसेसु । तिव्वाभिलासविरओ, परिहरओ पंचसु तिहीसु ॥ ३२५ ॥ जह दीवा दीवसयं, पईवई सोवि दिप्पई दीवो । दीवसमा आयरिया, दिप्पं च परं च दीवंति ॥ ३२६ ॥ कयवयकम्मयभावो १, सीलत्वं चेव तह य गुणवत्तं २।३ । रिउमइववहरणं चिअ ४, गुरुसुस्सूसा य बोधव्वा ५ ॥ ३२७ ॥ पवयणकोसलं पुण, ६ छट्ठं ठाणं तु होइ नायव्वं । छट्ठाणगुणेहिं जुओ, उक्कोसो सावगो होई ॥ ३२८ ॥

मैथुनप्रसक्तयोर्हि स्त्रीपुंसयोरुत्कृष्टतोऽष्टादशलक्षजीवा विनश्यन्ति । यदुक्तम् -

मेहुणसन्नारूढो, नव लक्खं हणेई सुहुमजीवाणं । केवलिणा पन्नत्तं, सद्दहिअव्वं पयत्तेण ॥ ३२९ ॥

इत्थीजोणीइ संभवंति बेइंदिया उ जे जीवा । एक्को व दो व तिण्णि व, लक्खपुहुत्तं च उक्कोसं ॥३३०॥

संसक्तायां योनौ एते द्वीन्द्रियाः शुक्रशोणितसंभवास्तु गर्भजपञ्चेन्द्रिया इमे-

पंचिंदिया-मणुस्सा इगनरसंभुत्तनारिगब्भंमि । उक्कोसं नवलक्खा, जायंते एगवेलाए ॥ ३३१ ॥ नवलक्खाणं मज्झे, जायइ इक्कस्स दुण्ह व समत्ती । सेसा पुण एमेव य, विलयं वच्चंति तत्थेव ॥३३२॥

संमूर्च्छिमपञ्चेन्द्रियमनुष्या अपि असंख्येयास्तथाहि-

असंख इत्थीनरमेहुणाओ, मुच्छंति पंचिंदिअमाणुसाओ । नीसेस अंगाण विभत्तिचंगे, भणइ जिणो पन्नवणा उवंगे ॥ ३३३ ॥ सल्लुद्धरणनिमित्तं, गीअत्थगवेसणा तु उक्कोसं । जोअणसयाइं सत्त उ, बारस वरिसाइं कायव्वा ॥ ३३४ ॥ अगीअत्थो न विआणइ, सो ऊ चरणस्स देइ ऊणऽहियं । ता अप्पाणं आलोअगं च पाडेइ संसारे ॥ ३३५ ॥ जं जयइ अगीअत्थो, जं च अगीअत्थनिस्सिओ जयई । वट्टावेई गच्छं, अणंतसंसारिओ होई ॥ ३३६ ॥ श्रद्धालुतां श्राति शृणोति शासनं, धनं वपेदाशु शृणोति दर्शनम् । कृतकृत्यं पुण्यानि करोति संयमं, तं श्रावकं प्राहुरमी विचक्षणाः ॥ ३३७ ॥ तेरसकोडिसयाइं, चुलसीकोडीओ बारस य लक्खा । सगसीइ सहस दो सय, सव्वग्गं छक्कभंगीए ॥ ३३८ ॥ १३८४१२८७२०० एतावन्तः ॥ सुन्नासुन्नो मीसो, तिविहो संसारचिट्ठणाकालो । तिरियाण सुन्नवज्जो, सेसाणं होइ तिविहो वि ॥ ३३९ ॥ नाणस्स केवलीणं, धम्मायरिअस्स सव्वसाहूणं । माई अवन्नवाई, किब्बिसिअं भावणं कुणई ॥ ३४० ॥

[इति श्रीभगवतीवृत्तौ प्रथम शतके द्वितीयोद्देशके ५० पत्रे ॥]

जलदोण १ मद्धभारं २, समुहाइं समूसिओ उ जो णव उ ३ । माणु १ म्माण २ पमाणं ३, तिविहं खलु लक्खणं एयं ॥ ३४१ ॥

[श्रीभगवतीवृत्तौ द्वितीयशतके प्रथमोद्देशके ११९ पत्रे ॥]

१-विस्तृतः-अन्तः सन्धिरहितः । २-एवंविधःपर्यस्तिकापट्टो योगपट्टो विश्रामहेतोः शरीरस्य गृह्यते, एवमवष्टम्भदोषा न स्युः । अयं च स्थविर १ ग्लान २ वाचनाचार्याणां ३ कल्पते नान्येषाम् । ३-**कप्पसिए० छप्पइआ न भवंति इअरहा बहू भवंति पणओ उल्लि अंतो उन्नियं पाउणिज्जमाणं मलीमसा य कंबली दुग्गंधा विहिपरिभोगेण सावि उज्झयणया परिहरिया पडगब्भकंबलिइ सीयत्ताणं कयं भवइ, एएण कारणेणं खोमियं बाहिं न पंगुरिज्जइ । निशीथे** ॥ ४-प्रथमचरमपौरुषी वर्जयित्वा उभयोरर्द्धं वर्जयित्वा उष्णे पात्रं स्थापयेत् अवश्याय—महिका—हिमवर्षा रक्षार्थं मध्ये पात्रं प्रवेशयेत् ॥ ओघनियुक्तिः (१४५)

"Aho Shrut Gyanam"

मस्तकशूचिविनाशे, तालस्य यथा ध्रुवो भवति नाशः । तद्वत्कर्म्मविनाशो, मोहनीयस्य क्षये नित्यं ॥ ३४२ ॥

[श्रीआचाराङ्गप्रथमश्रुतस्कन्धे ।]

जे उ दाणं पसंसंति, वहमिच्छंति पाणिणं । जे उ णं पडिसेहिंति, वित्तिच्छेअं करिंति ते ॥३४३॥

[श्रीआचाराङ्गप्रथमश्रुतस्कन्धे षष्ठाध्ययने २३३ पत्रे ।]

जम्मा[1] १ भिसेअ २ निक्खमण ३ चरण ४ नाणुप्पया य ५ निव्वाणे ६ । दिअलोअभवण ७ मंदर ८, नंदीसर ९ भोमनगरेसुं १० ॥ ३४४ ॥ अट्ठावय ११ उज्जिंते १२ गयग्गपयए[2] अ १३ धम्मचक्के अ १४ । पास १५ रहावत्तनगं १६, चमरुप्पायं च वंदामि ॥ ३४५ ॥

[इदं गाथाद्वयं श्रीआचाराङ्गद्वितीयश्रुतस्कन्धप्रान्ते तृतीयचूलायां श्रीआचाराङ्गनिर्युक्तौ ३८५ पत्रे ॥]

अलिअं[3] न भासिअव्वं, अत्थि हु सच्चंपि जं न वत्तव्वं । सच्चंपि होइ अलिअं, जं परपीडाकरं वयणं ॥ ३४६ ॥

[इति श्रीआचाराङ्गद्वितीयश्रुतस्कन्धे चतुर्थाध्ययने प्रथमोद्देशके वृत्तौ ३५६ पत्रे ॥]

सत्तरिसयमुक्कोसं १७०, इअरे दस १० समयखेत्तजिणमाणं । चोत्तीस पढमदीवे, अणंतरऽद्धे य ते दुगुणा ॥ ३४७ ॥

[इति आचाराङ्गवृत्तौ चतुर्थाध्ययने प्रथमोद्देशके १६२ पत्रे ॥]

यथाप्रकारा यावन्तः संसारावेशहेतवः [आश्रवाः] । तावन्तस्तद्विपर्यासा-न्निर्वाणसुखहेतवः ॥३४८॥

[आचाराङ्गवृत्तौ ४ अध्ययने २ उद्देशके १६४ पत्रे ॥]

कारणमेव तदन्त्यं, सूक्ष्मो नित्यश्च भवति परमाणुः । एकरसवर्णगन्धो, द्विस्पर्शः कार्यलिङ्गश्च ॥३४९॥

[इति श्रीस्थानाङ्गवृत्तौ ॥]

जेसिमवड्ढो[4] पुग्गल,-परिअट्टो सेसओ अ संसारे । ते सुक्कपक्खिया[5] खलु, अहिए पुण कण्हपक्खाओ ॥ ३५० ॥ मूलं १ साह २ पसाहा ३, गुच्छ ४ फले ५ छिंद पडिअभक्खणया ६ । सव्वं १ माणुस २ पुरिसा ३, साउह[6] ४ जुज्झंत ५ धणहरणा ॥ ३५१ ॥ (?)

लिङ्गदानविधिमाह—

["पुव्वामुहो[7] उ उत्तरमुहो व देज्जाऽहवा पडिच्छेज्जा । जाए जिणादओ वा, हवेज्ज जिणचेइयाइं वा ॥ १ ॥"]

[श्रीस्थानाङ्गे २ स्थाने १ उद्देशके वृत्तौ ५७ पत्रे ॥]

१–जम्मभूमी १, अभिसेओ–जत्थ रायाभिसेओ वा २, निक्खमणो–जहिं निक्खंतो ३, चरणं–कुम्मारगामा अट्ठिअगामादि जत्थ हिंडंतो ४, नाणुप्पायभूमी ५, निव्वाणभूमी ६, भावे तस्स आगाढं दंसणं भवति । इति श्रीआचाराङ्गचूर्णौ । २–गजाग्रपदे दशार्णकूटवर्त्तिनि तथा तक्षशिलायां धर्मचक्रे, तथा अहिच्छत्रायां पार्श्वनाथस्य धरणेन्द्रमहिमास्थाने, एवं रथावर्त्ते पर्वते वैरस्वामिना यत्र पादपोपगमनं कृतं यत्र च श्रीमत् वर्द्धमानमाश्रित्य चमरेन्द्रेणोत्पतनं कृतम् ॥ ३–"से भिक्खू वा० जा य भासा सच्चा सुहुमा जा य भासा असच्चामोसा तहप्पगारं भासं असावज्जं जाव अभूओवघाइयं अभिकंख भासं भासिज्जा" वृत्तिः–स भिक्षुः यां पुनरेवं जानीयात् तद्यथा–या च भाषा सत्या 'सूक्ष्मा'ति कुशाग्रीयया बुद्ध्या पर्यालोच्यमाना मृषाऽपि सत्या भवति, यथा सत्यपि मृगदर्शने लुब्धकादेरपलोप इति, उक्तञ्च–'अलियं' इत्यादि, आचाराङ्गवृत्तौ । ४–अर्द्धपुद्गलपरावर्त्तः किञ्चिन्न्यूनः । ५–शुक्लो विशुद्धत्वात्पक्षोऽभ्युपगमः शुक्लपक्षस्तेन चरन्तीति शुक्लपाक्षिकाः, शुक्लत्वं च क्रियावादित्वेन, इति स्थानाङ्गवृत्तौ । ६–साउह–आयुधसहितः । ७–पुव्व०–पूर्वाभिमुखः १ उत्तराभिमुखो २ वा दद्यात् गुरुः । अथवा प्रतीच्छेच्छिष्यो यस्यां जिनादयो वा दिशिजिनाः मनःपर्यायज्ञानिनः अवधिसंपन्नाश्चतुर्दशपूर्वधरा नवपूर्वधराश्च जिनचैत्यानि वा यस्यां सा दिशि आसन्नानि तदभिमुखो दद्यादथवा प्रतीच्छेदिति गाथार्थः ॥ १ ॥ इति पञ्चवस्तुकवृत्तौ २३ पत्रे ॥

"Aho Shrut Gyanam"

भूए अणाइकाले, केई होहिंति गोअमा ! सूरी । जेसिं नामग्गहणे, नियमेणं होइ पच्छित्तं ॥३५२॥ एअं गच्छववत्थं, दुप्पणिहाणंतरं तु जो खंडे । तं गोअम ! जाण गणिं, निच्छयओअणंतसंसारिं ॥३५३॥

[इदं गाथाद्वयं श्रीमहानिशीथे पञ्चमाध्ययने ४२ पत्रे ॥]

सूईहिं अग्गिवन्नाहिं, संभिन्नस्स निरंतरं । जावइअं गोअमा ! दुक्खं, गब्भे अट्ठगुणं तहा ॥३५४॥ गब्भाओ निप्फडंतस्स, जोणीजंतनिपीडणे । कोडिगुणं तयं दुक्खं, कोडाकोडिगुणं पि वा ॥ ३५५ ॥

[श्रीमहानिशीथे पञ्चमाध्ययने ॥]

जह सगडक्खोवंगो, कीरइ भरवहणकारणा नवरं । तह गुणभरवहणत्थं, आहारो बंभयारीणं ॥३५६॥

[श्रीउत्तराध्ययने अष्टमाध्ययने वृत्तौ २९४ पत्रे ॥]

दो वाससहस्सठिई, देवाणं होइ विसयपरिभोगो । पणसय पणसय हाणी, जोईसिअ-भवण-वण-यराणं ॥३५७॥ चउविहसंघसमेयं, मुणिगणधेअं वि पत्तजयसेअं । वीरजिणंदं नमिउं, थुणामि चउवीस-जिणसंघं ॥३५८॥ सिरिपुंडरीयगोयमपमुहा गणहारिणो महामुणिणो । चउदससयबावन्ना (१४५२), जयंतु निच्चं दुरिअहरणा ॥३५९॥ मुणिउसहसेणपमुहा-ऽडयालसहस्स लक्ख अडवीसा (२८४८०००) । बंभी सुंदरिचंदण चोआललक्खा छच्चत्तसहस्सा (४४४६०००) ॥ ३६० ॥ चउरसयाछडहिया, सेयंसाणंदकामदेवा य । पणपन्नलक्खसहसातिपन्नया (५५५३४०६) सावया सरह ॥ ३६१ ॥ सुभद्दा सुलसा रेवई, एगा कोडी अवरलक्खा य । नवनवइसहसतिसया पन्नासा (१०१९९३५०) साविया सरह ॥ ३६२ ॥ सिरिसुहमजंबुपमुहा, दुसहस्स चउत्तरा जुगपहाणा (२००४) । तत्तुल्ला मुणिवसहा, इगारलक्खा सहस्स सोला (१११६०२०) ॥ ३६३ ॥ जिणभत्तनिवा उ इगारलक्खा सोल सहस्स वीस हिया (१११६०२०) । एए पभायसमए, सरिअव्वा भव्वभावेणं ॥ ३६४ ॥ एअं चउविहसंघं, गुणरयणमयं सरेइ जो भव्वो । पइदियहं तिकालं, सो पावे निज्जरं गुरुअं ॥ ३६५ ॥ रिसहेससमं पत्तं, निरवज्जं इक्खुरससमं दाणं । सेअंससमो भावो, हविज्जा जइ मग्गिअं हुज्जा ॥३६६॥ अरिहंतसिद्धसूरी, उवज्झाया साहुसाहुणीओ अ । सावय-साविअरूवं, वंदे संघं तिकालभवं ॥३६७॥ इअ विमलगुणोहं चत्तनीसेसदोहं, विजिअपबलमोहं भिन्नभावारिजोहं । थुणइ तवमहग्घं जो सया सव्वसंघं, लहइ अ सिव सिग्घं; छिन्नसंपुन्नविग्घं ॥ ३६४ ॥

जिणकप्पिया य साहू, उक्कोसेणं तु[3] एगवसहीए । सत्त य हवंति कहमवि, अहिया कइयावि नो हुंति ॥ ३६९ ॥

[प्रवचनसारोद्धारे गा. ५३९ ४८१ पत्रे ॥]

आयरिय १ उवज्झाए २, तवस्सि ३ सेहे ४ गिलाण ५ साहूसुं ६ । समणोन्न ७ संघ ८ कुल ९ गण १०, वेयावच्चं हवइ दसहा ॥ ३७० ॥

[प्रवचनसारोद्धारे गा. १६१ ॥]

मुहपोत्ति १ चोलपट्टो २, कप्पतिगं ५ दो निसिज्ज ७ रयहरणं ८ । संथारु ९ त्तरपट्टो १०, दस पेहाऽणुग्गए सूरे ॥ ३७१ ॥

[प्रवचनसारोद्धारे गा. ५९१ ४८२ पत्रे ॥]

१–गुणानं आसओ दव्वं, एगदव्वस्सिया गुणा । लक्खणं पज्जवाणं तु, उभओ अस्सिया भवे ॥ १ ॥ श्री**उत्तराध्ययने** २८। (५५७ पत्रे) २–ज्योतिष्काणां १५००, भवनपतीनां १०००, व्यन्तराणां ५०० वर्षाणि परिभोगः । ३–यद्यपि चैकस्यां वसतौ उत्कृष्टतः सप्त जिनकल्पिकाः प्रतिवसंति तथापि परस्परं न भाषन्ते, धर्मवार्तामपिन कुर्वन्ति वीथ्यामपि चैकस्यामेक एव जिनकल्पिकः प्रतिदिनमटति न पुनः पर इति । ४–समणोन्न०–एकसामाचारीकाः । साध्वादिचतुर्विधसंघः–एकजातीयबहुगच्छसमुदायः । कुलं–चन्द्रादि, गणस्तु–एकाचार्यप्रणेयः साधुसमूहः । ५–कप्पतिगं–द्वौ सौत्रौ एक और्णिकः । 'दो निसिज्जा'–द्वे निषद्ये–रजोहरणस्य, एका सूत्रमयी अभ्यन्तरेनिषद्या, द्वितीया बाह्या पादप्रोञ्छनरूपा ।

"Aho Shrut Gyanam"

पडिलेहणं कुणंतो, मिहो कहं कुणइ जणवयकहं वा । देइ व पच्चक्खाणं, वाएइ सयं पडिच्छइ वा ॥ ३७२ ॥ पुढवी आउक्काए तेऊ वाऊ, वणस्सइतसाणं । पडिलेहणापमत्तो, छण्हंपि विराहओ भणिओ ॥ ३७३ ॥

[प्रवचनसारोद्धारवृत्तौ १५६ पत्रे ॥]

मणगुत्तिमाइआओ, गुत्तीओ तिन्नि हुंति नायव्वा । अकुसलनिवित्तिरूवा, कुसलपवित्तिस्सरूवा य ॥ ३७४ ॥

[प्रवचनसारोद्धारे गा. ५९५ १६७ पत्रे ॥]

लट्ठी १ तहा विलट्ठी २, दंडो य ३ विदंडओ य ४ नाली य ५ । भणियं दंडगपणगं, वक्खाणमिणं भवे तस्स ॥ ३७५ ॥ लट्ठी आयपमाणा १, विलट्ठि चउरंगुलेण परिहीणा । दंडो बाहुपमाणो ३, विदंडओ कक्खमित्तो उ ४ ॥ ३७६ ॥ लट्ठीए चउरंगुल समूसिया दंडपंचगे नाली ५ । नइपमुहजलुत्तारे, तीए थग्गिज्जए सलिलं ॥ ३७७ ॥ बंज्झइ विलट्ठीऍ जवणिआ विलट्ठीए कत्थइ दुवारं । घट्टिज्जए ओवस्सयतणयं तेणाइरक्खट्ठा ॥ ३७८ ॥ उँउबद्धंमि उ दंडो ४, विदंडओ घिप्पए वरिसयाले ५ । जं सो लहुओ निज्जइ, कप्पंतरिओ जलभएणं ॥ ३७९ ॥ उँवसमसेणिचउक्कं, जायइ जीवस्स आभवं नूनं । ता पुण दो एगभवे, खवगसेणी भवे एगा ॥ ३८० ॥

[प्रवचनसारोद्धारे गाथा ६६९-६७३-४८६ पत्रे ॥]

उच्चासणं समीहइ विणयं न करेइ गव्वमुव्वहइ । बुँड्ढो न दिक्खिअव्वो, जइ जाओ वासुदेवेणं ॥३८१॥

[प्रवचनसारोद्धारे गा. २२९ ॥]

मुल्लजुअं पुण तिविहं, जहण्णयं १ मज्झिमं च २ उक्कोसं ३ । जँहण्णेणट्ठारसगं, सयसाहस्सं च उक्कोसं ॥ ३८२ ॥ चउदस १ दस य २ अभिण्णे, निअमा सम्मं तु सेसए भयणा । मँइ ओहि विवज्जासे, होइ हु मिच्छं न सेसेसु ॥ ३८३ ॥

[बृहत्कल्पेऽपि-उ० ६]

दुँविहे गेलण्णम्मि २ अ, निमंतणे ३ दव्वदुल्लहे ४ असिवे ५ । ओमोदरिय ६ पओसे ७, भए ८ य गहणं अणुन्नण्णातं ॥ ३८४ ॥

[प्रवचनसारोद्धारवृत्तौ बृहद्भाष्ये महानिशीथे ९ उद्देशकेऽपि ॥]

१–आभ्यां भेदाभ्यां वाग्गुप्तेः सर्वथा वाग् निरोधः १, सम्यग् भाषणं च आभ्यां भेदाभ्यां वाग् गुप्तेः २ रूपं प्रतिपादितं भवति, भाषासमितौ तु वाक्प्रवृत्तिरेवेति वाग्गुप्तिभाषासमित्योर्भेदः । २–बज्झइ०–भोजनसमये सागारिकादिरक्षायै । ३–उउ०–भिक्षाभ्रमणे प्रद्विष्टद्विपदचतुष्पदादिवारणार्थं वृद्धत्वेऽवष्टम्भार्थं च । ४–उवसम०–ते पुनः उपशमश्रेण्यौ एकस्मिन् भवे उत्कर्षतो द्वे भवे । ५–बुड्ढो०–सप्ततिवर्षेभ्यः परतो वर्षशतायुष्कापेक्षमिदम्, अन्यथा यस्मिन् काले उत्कृष्टमायुस्तद्दशधा विभज्याष्टमनवमदशमभागेषु वर्त्तमानस्य वृद्धत्वमवसेयम् । ६–जहण्णेण०–यस्याष्टादश रूप्यका नाणकविशेषा मूल्यं तज्जघन्यं वस्त्रम् एतादृशमूल्यमपि न ग्राह्यं, किन्तु अष्टादशरूप्यकेभ्योऽपि यदल्पमूल्यं तद् ग्राह्यमिति भावः । ७–मइ०–किञ्चिन्न्यूनपूर्वधरादौ भजना सम्यक्त्वं वा स्यान्मिथ्यात्वं वा स्यादित्यर्थः, मतेरवधेश्च विपर्यासे मत्यज्ञाने विभङ्गज्ञाने च मिथ्यात्वं भवति, शेषयोस्तु मनःपर्यवज्ञान–केवलज्ञानयोर्मिथ्यात्वं न भवत्येव ॥ ८–दुविहे०–गाढतरे १ आगाढतरे च २ ग्लानत्वे शय्यातरपिण्डोऽपि ग्राह्यः । गाढतरे त्रीन् वारान् आहिण्ड्यते यदि न लब्धं ग्लानप्रायोग्यं तदा शय्यातरपिण्डोऽपि ग्राह्यः । आगाढतरे पुनः शीघ्रमेव शय्यातरपिण्डो ग्राह्यः । गृहिनिमन्त्रणे शय्यातरनिर्बन्धे सकृत् तं गृहीत्वा पुनः प्रसङ्गो निवारणीयः ३ । दुर्लभे च क्षीरादिद्रव्ये आचार्यादीनां प्रायोग्ये अन्यत्रालभ्यमाने तत्रैव गृह्णन्ति ४ । अशिवे दुष्टव्यन्तरोपद्रवादिके ५ । अवमौदार्ये च दुर्भिक्षेऽन्यत्र भिक्षायामलभ्यमानायाम् ६ । प० राज्ञा प्रद्विष्टेन सर्वत्र भैक्ष्ये निवारिते प्रच्छन्नं तद्गृहेऽपि गृह्यते ७ । अन्यत्र तस्करादिभये ८ तत्रापि स्वीकुर्वन्ति ।

"Aho Shrut Gyanam"

सव्वेऽपि पढमजामे, दुण्णि य वसहाण आइमा जामा । तइओ होइ गुरूणं, चउत्थ सव्वे गुरू सुअई ॥ ३८५ ॥ आलोअणापरिणओ, सम्मं संपट्ठिओ गुरुसगासे । जइ अंतरावि कालं, करिज्ज आराहओ तह वि ॥ ३८६ ॥

[श्रीउत्तराध्ययनवृत्तावपि ॥]

अद्धमसणस्स सवं, जणस्स कुज्जा दवस्स दो भागो । वायपरिचारणट्ठा, छब्भागं ऊणगं कुज्जा ॥ ३८७ ॥ सीए दवस्स एगो, भत्ते चत्तारि अहव दो पाणे । उसिणे दवस्स दुण्णा, तिण्णि वि सेसाओ भत्तस्स ॥ ३८८ ॥ कम्ममसंखिज्जभवं, खवेइ अणुसमयमेव आउत्तो । अन्नयरंमि वि जोए, सज्झायंमि विसेसेणं ॥ ३८९ ॥

[श्रीउत्तराध्ययनवृत्तौ २३ अध्ययने १८ द्वारे ॥]

छट्ठट्ठमदसमदुवालसेहिं अबहुस्सुअस्स जा सोही । तत्तो बहुतरिअगुणा, हवई जिमिअस्स नाणिस्स ॥ ३९० ॥

[श्रीउत्तराध्ययनवृत्तौ ३१ अध्ययने ॥]

ततादिवाद्ययुक्तेन, कर्त्तव्यं नृत्यकोविदैः । चत्वारो मुख्यगातारो, द्विगुणाः समगायनाः ॥ ३९१ ॥ अष्टौ च गायिन्यः प्रोक्ताः २०, तालधारिचतुष्टयम् २४ । मार्दङ्गिकास्तु चत्वारो २८, वांशिकानां चतुष्टयम् ३२ ॥ ३९२ ॥ एवं चोत्तमवृन्दं स्यात्, कर्त्तव्यं च सदा बुधैः । मध्यमं स्यात्तदर्द्धेन, तदर्द्धेन लघु स्मृतम् ॥ ३९३ ॥

[इति द्वात्रिंशद्विधं नाटकं लौकिकम् ॥]

उसहे भरहो १ अजिए सगरो २ मघवं ३ सणंकुमारो य ४ । धम्मस्स य संतिस्स य, जिणंतरे चक्कवट्टिदुगं ॥ ३९४ ॥ संती ५ कुंथू अ ६ अरो ७, अरिहंता चेव चक्कवट्टी अ । अरिमल्लीअंतरे पुण, हवइ सुभूमो ८ अ कोरवो ॥ ३९५ ॥ मुणिसुव्वए नमिम्मि य हुंति दुवे पउमनाह ९ हरिसेण १० । नमिनेमिसु जयनामो ११, अरिट्ठपासंतरे बंभो १२ ॥ ३९६ ॥ अट्ठेव गया मोक्खं, १ सुभूमो बंभो य २ सत्तमिं पुढविं । मघवं १ सणंकुमारो २, सणंकुमारं गया सग्गं ॥ ३९७ ॥ भीमनासो १ महाभीमो २, रुद्रनामा तृतीयकः ३ । महारुद्रश्च ४ कालश्च ५, महाकाल ६ श्चतुर्मुखः ७ । नरवक्त्रः ८ कच्छुलाख्यो ९, नवैते नारदाः स्मृताः ॥ ३९८ ॥ जत्थ न दीसंति गुरू, पच्चूसे उट्ठिऊण सुपसंला । तत्थ कहं जाणिज्जइ, जिणवयणं अमिअसारिच्छं ॥ ३९९ ॥ न हणइ १ न हणावेइ २, हणंतं नाणुजाणई ३ । न पयइ ४ न पयावेई ५, पयंतं नाणुजाणई ७ ॥ ४०० ॥ न किणइ ७ न किणावेई ८ किणंतं नाणुजाणई ९ । जो भिक्खू तस्स तं होई, नवकोडीविसुद्धयं ॥ ४०१ ॥ दर्शनानि षडेवाहु-र्जैनं १ मीमांसकं २ तथा । बौद्धं ३ नैयायिकं ४ वैशेषिकं ५ साङ्ख्य-६ मिति क्रमात् ॥ ४०२ ॥ पच्चक्खाण १० मभिग्गह ४, सिक्खा ७ तव १२ पडिम ११ भावणा १२ खित्तं १४ । धम्मो ४ पूया य तहा १७, गिहिउत्तरगुणइगुणनवई ८९(९१) ? ॥४०३॥ जो अविरओ वि संघे, भत्तिं तित्थुन्नई सया कालं । अविरइसम्मदिट्ठी,-पभावगो सावगो सोऽवि ॥ ४०४ ॥ आउट्टिथूलहिंसाइ-मज्जमंसाइ चायओ । जहण्णो सावओ वुत्तो, जो नमुक्कारधारओ ॥ ४०५ ॥ धम्मजुग्गगुणाइण्णो, छक्कमो बारसावओ । गिहत्थो असयायारो, सावओ होइ मज्झिमो ॥ ४०६ ॥

१–पढम०–जाग्रति गीतार्थः प्रज्ञापनादिसूत्रगुणनेन जाग्रति, तृतीये यामे गुरुः रात्रिं जाग्रति गुरुस्तु शेते, अन्यथा निद्रावशेन व्याख्यानादि कर्तुं न शक्नुवन्ति । २–भत्ते०–अतिशीते १ मध्यमे शीतकाले तु द्वौ पानीयस्य तु त्रयो भागा भक्तस्य २ मध्यम उष्णकाले द्वौ पानस्य त्रयो भक्तस्य ३, अत्युष्णे काले त्रयः पानीयस्य द्वौ भक्तस्य ।

"Aho Shrut Gyanam"

उक्कोसेणं तु सड्ढो उ, सच्चित्ताहारवज्जओ । एगासणभोई य, बंभयारी तहेव य ॥ ४०७ ॥ अह न सक्केइ काउं, एगभु[भ]त्तं सया पुणो । दिवसस्स अट्ठमे भागे, तओ भुंजे सुसावओ ॥ ४०८ ॥ जिण-भवणं १ जिणबिंबं २, जिणभत्तो राय ३ जिणमओ मंती ४ । साइसया आयरिया ५, पंचुज्जोआ जिणमयंमि ॥ ४०९ ॥ आवीइ १ ओहि २ अंतिअ ३, बलायमरणं च ४ विसट्टमरणं च ५ । अंतो-सल्लं ६ तब्भव ७, बालं ८ तह पंडिअं ९ मीसं १० ॥ ४१० ॥ छउमत्थमरण ११ केवलि १२ विहाणसं १३ गिद्धपिट्ठमरणं च १४ । मरणं भत्त १५ (भत्तप्पच्चक्खाणं), इंगिणि १६, पाओव-गमणं च १७ ॥ ४११ ॥ पण्णा १ ऽण्णाण २ परीसह, नाणावरणंमि हुंति दो चेव । इक्को अ अंतराए, अलाभपरीसहो चेव ॥ ४१२ ॥ अरई १ अचेल २ इत्थी ३, निसीहिआ ४ जायणा य ५ अक्कोसा ६ । सक्कारपुरक्कारे ७, चरित्तमोहंमि सत्तेव ॥ ४१३ ॥ दंसणमोहे दंसण,-परीसहो निअमया हवइ इक्को । सेसा परीसहा खलु, इक्कारस वेअणिज्जंमि ॥ ४१४ ॥ बावीसं बायरसंपराइ चउदस य सुहुमरागंमि । छउमत्थवीअरागे, चउदस इक्कारस जिणंमि ॥ ४१५ ॥ वीसं उक्कोसपए, वट्टंति जहण्णओ अइक्कं च । सी—उसिण—चरिअ—निसीहिआ य जुगवं न वट्टंति ॥ ४१६ ॥ ईसीपब्भा-राए, उवरिं खलु जोअणस्स जो कोसो । कोसस्स य छब्भाए, सिद्धाणोगाहणा भणिआ ॥ ४१७ ॥ तिण्णेव[2] धणुसयाइं, धणुतित्तीसं च धणुतिभागो अ । इअ एसा उक्कोसा, सिद्धाणोगाहणा भणिया ॥४१८॥ सिज्झंति जत्तिया खलु, इहहिं ववहाररासिमज्झाओ । इंति अणाइवणस्सइ-मज्झाओ तत्तिआ चेव ॥ ४१९ ॥ चउहा अणंतजीवा, उवरिं उवरिं अणंतगुणिआओ । अभविअ १ सिद्धा २ भविआ ३, जाईभव्वा ४ चउत्थाओ ॥ ४२० ॥ जमालि १ तीसगुत्तो २, आसाढो ३ आसमित्त ४ गंगोअ ५ । रहगुमित्त ६ गुत्त ७ माहिल ८, अट्ठेव य निह्नवा भणिआ ॥ ४२१ ॥ सेणिअ १ सुपास २ पुट्टिल ३, संखो ४ सयगो ५ उदाइ ६ पेढालो ७ । सुलसा ८ रेवइजीवो ९, नव जीवा वद्धमाणस्स ॥४२२॥ गयकुंभि १ संखमज्झे २, मच्छमुहे ३ वंसि ४ वराहडाढासु ५ । सप्पसिरे ६ तह मेहे ७, सिप्पउरे ८ मुत्तिआ हुंति ॥ ३२३ ॥

जहिं नत्थि सारणा वारणा य पडिचोअणा य गच्छम्मि । सो अ अगच्छो गच्छो मोत्तव्वो संजमत्थीहिं ॥ ४२४ ॥

[इति स्थानाङ्गवृत्तौ ॥]

उववाएण सायं १, नेरइओ देवकम्मुणा वावि । अज्झवसाणनिमित्तं २, अहवा कम्माणु-भावेणं ॥ ४२५ ॥

[इति जीवाभिगमसूत्रे, एवमेव श्रीवसुदेवहिण्डावपि ॥]

नेरईआणुप्पाओ, उक्कोसं पंचजोअणसयाइं । दुक्खेणभिहुआणं, वेअणसहस्संपगाढाणं ॥ ४२६ ॥

[जीवाभिगमवृत्तौ ॥]

तेआकम्मगसरीरा, सुहुमसरीरा य जे अपज्जत्ता । जीवाण मुक्कमेत्ता, वच्चंति सहस्ससो भेअं ॥४२७॥

[जीवाभिगमे ॥]

१–मरणं द्वेधा–सविचारम् अविचारं च, सहविचारेण चेष्टया वर्त्तते यत्सविचारं, तद्विपरीतमविचारम्, तत्र सविचारं द्वेधा–भक्तप्रत्याख्यानम् इंगिनीमरणं च । इंगिनीमरणं च विधिना प्रपद्य शुद्धस्थण्डिलस्य एकाकयेव कृतचतुर्विधाहारप्रत्याख्यानः स्थण्डिलस्यान्तः छायातः उष्णे उष्णावस्थायां स्वयं संक्रामति, तथा चाह— **इंगियमरणविहाणं, आपवज्जं तु वेयणं दाउं । संलेहणं च काउं, जहा समाही जहा कालं ॥ १ ॥ पच्चक्खत्ति आहारं, चउविहं नियम गुरुसगासे । इंगियदेसंमि तहा, चिट्ठंपि हु इंगियं कुणइ ॥ २ ॥ इंगितां**-तत्कालयोग्यां चेष्टाम् ।

२–**तिण्णेव**०–३३३ धनुष, १ हाथ, ८ अङ्गुल सिद्धस्यावगाहनामानं पञ्चशतधनुर्देहमानं यदा त्रिभागोनं क्रियते तदा एतद्भवति त्रिभागमान १६६ धनुष, २ हाथ, अंगुल १६ । ३–एतस्या व्याख्याने जघन्यत उत्पातो गव्यूतमात्रम्, एतच्च **संप्रदायादवसीयते** ॥

"Aho Shrut Gyanam"

यथा लोहं सुवर्णत्वं, प्राप्नोत्यौषधयोगतः । आत्मध्यानात्तथैवात्मा, परमात्मत्वमश्नुते ॥ ४२८ ॥

[इति सङ्घाचारवृत्तौ ॥]

दिसि[1]-पवण-गाम-सूरिय-छायाएँ पमज्जिऊण तिक्खुत्तो । जस्सोग्गहोत्ति काऊणं वोसिरे आयमेज्जा वा ॥ ४२९ ॥

उत्तर[2]पुवा पुज्जा, जम्माएँ निसिअरा अभिवडंति । घाणाऽरिसा य पवणे, सूरिअगामे अवण्णो उ ॥ ४३० ॥

[इति श्रीओघनिर्युक्तिसूत्रे १२५-पत्रे पञ्चवस्तुक सूत्रे २५७ पत्रे ॥]

इदानीं 'छायाए'त्ति व्याख्यानयन्नाह-

संसत्त[3]ग्गहणी पुण छायाए निग्गयाय वोसिरई । छायाऽसइ उण्हंमि वि, वोसिरिअ मुहुत्तगं चिट्ठे ४३१

[इति श्रीओघनिर्युक्ति सूत्रे १२५ पत्रे पञ्चवस्तुक सूत्रे २५७ पत्रे ॥]

चउव्विह अणंता जीवा, उवरिं उवरिं अणंतगुणणाए । अभविअ १ सिद्धा २ भविआ ३, जाई भविआ ४ चउत्था य ॥ ४३२ ॥ सिद्धा सिद्धिं पत्ता १, सेसा तिण्णेव सयललोगंमि । किंतु अभवा १ जाईभवा २, न कयाइ सिज्झंति ॥ ४३३ ॥

[इति गाथाद्वयं जीवाभिगमे ॥]

अ[4]वलंबिऊण कज्जं, जं किंचिवि आयरंति गीअत्था । थोवाऽवराहबहुगुण, सव्वेसिं तं पमाणंति ॥४३४॥

[इति संघाचारबृहद्वृत्तौ ३९४ पत्रे ॥]

तम्हा सव्वपयत्तेणं, जो नमुक्कारधारओ । सावओ सोऽवि दट्ठव्वो, जहा परमबंधवो ॥ ४३५ ॥

[संघाचारवृत्तौ ३७१ पत्रे ॥]

जो जीवइ वरिससयं, दिणे दिणे माणगंमि एगंमि । छप्पन्न हुंति मूडा, चालीसा चेव सेईओ ॥ ४३६ ॥

[उपदेशरसालग्रन्थे ३९४ पत्रे ॥]

ताराबलादिन्दु १-रथेन्दुवीर्या-द्दिवाकरः संक्रममाण उक्तः २ । ग्रहाश्च सर्वेऽपि बलेन भानो,-र्भवन्त्य ३-शस्ता अपि सुप्रशस्ताः ॥ ४३७ ॥

[रत्नमालायाम् ॥]

ब[5]लक्षपक्षादिगते हिमांशौ, शुभे शुभं पक्षमुदाहरन्ति १ । सि[6]तेतरादावशुभे शुभं च २, पक्षावनिष्टौ भवतोऽन्य[7]था तौ ॥ ४३८ ॥ राशौ राशौ द्वादशेन्दोरवस्थाः, प्रोक्ताः कैश्चित्सूरिभिः प्रोषिताद्याः । यात्राजन्मोद्वाहकालेषु नूनं, सञ्ज्ञा तुल्यं तत्फलं चिन्तनीयम् ॥ ४३९ ॥

तासां नामानि-

१-'दिसि०'-उत्तरायां पूर्वायां च दिशि पृष्ठं न दातव्यं लोकविरोधात्, तथैव पवनग्रामसूर्याणां च पृष्ठं दत्वा न व्युत्सृजनीयं लोकविरोधादेव तथा छायायां प्रमार्जयित्वा 'तिक्खुत्तो' वारत्रयं निर्लेपनं वा पानकेन एवमेव कुर्यात् । रात्रौ दक्षिणायां दिशि उत्तरायां दिशि देवाः प्रयान्ति इति लोके श्रुतिः ॥ २-उत्तरापूर्वा च लोके पूज्या, सूर्यग्रामयोः पृष्ठदानेऽवर्णवादः । ३-संसक्तग्रहणे कृमिसंसक्तोदर इत्यर्थः । यदा असौ साधुर्भवेत् तदा वृक्षच्छायायां निर्गतायां व्युत्सृजति । अथ छाया न भवति ततश्च व्युत्सृज्य मुहूर्त्तमात्रं तिष्ठेत् येन ते कृमयः स्वयमेव परिणमते ॥ ४-अवलम्ब्य-आश्रित्य कार्यं यत्किञ्चिदाचरन्ति सेवन्ते गीतार्था आगमविदः स्तोकापराधं बहुगुणं मासकल्पविहारवत्सर्वेषां जिनमतानुसारिणां तत्प्रमाणमेव उत्सर्गापवादरूपत्वादागमस्येति गाथार्थः ॥ ४३४ ॥ इति **पञ्चकवस्तुकवृत्तौ** ॥ ५-**बलक्ष**०-शुक्लप्रतिपत् । ६-**सिते**० कृष्णप्रतिपत् । ७-यदि शुक्लप्रतिपदि चन्द्रोऽशुभस्तदा स पक्षोऽप्यनिष्टः, अथ कृष्णपक्षप्रतिपदि यदि चन्द्रः शुभस्तदा स पक्षोऽनिष्टः ।

"Aho Shrut Gyanam"

प्रवास १ नष्टाख्य २ मृता ३ जयाख्या ४, हास्यं ५ रति ६ क्रीडित ७ सुप्त ८ भुक्ताः ९ । ज्वराह्वया १० कम्पित ११ सुस्थिते च १२, द्विषट्कसंख्या हिमगोरऽवस्था ॥ ४४० ॥

श्रीरत्नमालायाम्–

सम्मत्तंमि अ लद्धे, पलिअपुहत्तेण सावओ हुज्जा । चरणोवसमखयाणं, सागरसंखंतरा होंति[3] ॥४४१॥

[पञ्चाशकवृत्तौ ॥]

जम्हा दंसणनाणा, संपुण्णफलं न दिंति पत्तेयं । चारित्तजुआ दिंती, विसेस एतेण चारित्तं ॥४४२॥

[इति संस्तारकवृत्तौ ॥]

सिअकमल १ कलस २ सत्थिअ ३, नंदावत्त ४ वरमल्ल ५ दामाणं ६ । तेसिंपि मंगलाणं, संथारो मंगलं अहिअं ॥ ४४३ ॥

[इति संस्तारकप्रकीर्णके ५४ पत्रे ॥]

जं बद्धमसंखिज्जाहिं असुहं भवसयसहस्सकोडीहिं । एगसमएण विहणइ, संथारं आरुहंतो अ ॥४४४॥

[इति संस्तारक प्रकीर्णके गा० १०८ ६० पत्रे ॥]

[4]भावजिणप्पमुहाण वि, सव्वेसिं जइवि वंदणा तह वि । जिणचेइआणं पुरओ, कीरइ चिइवंदणा तेण ॥ ४४५ ॥ जिणबिंबाभावे पुण, ठवणागुरुसक्खिया वि कीरंती । चिइवंदणव्विअ इमा, तत्थवि परमिट्ठि ठवणाओ[5] ॥ ४४६ ॥ अहवा जत्थ व तत्थ व, पुरओ परिकप्पिऊण जिणबिम्बं । कीरइ बुहेहिं एसा, नेआ चिइवंदणा जम्हा ॥ ४४७ ॥

[इति गाथात्रयं बृहत्कल्पभाष्योक्तं श्रीसङ्घाचारवृत्तौ १३ पत्रे ॥]

[6]उस्सग्गओ नेव सुअं पमाणं, न वाऽपमाणं कुसला वयंति । अंधो य पंगुं वहते स चावि, कहेति दोण्हं पि हिआय पंथं ॥ ४४८ ॥

[बृहत्कल्पभाष्ये उ० २ ॥]

पंचण्ह मोहसण्णा १, हेऊ सन्ना बेंदिआईणं । सुरनारयगब्भुब्भव-जीवाणं कालिगी सण्णा ॥ ४४९ ॥ छउमत्थाणं सन्ना, सम्मद्दिट्ठीण होइ सुअणाणं । मइवावारविमुक्का, सण्णारहिआ य केवलिणो ॥ ४५० ॥ जत्तिअतुमित्ता वारा, तु बंधते मुंचते जत्तिआ वारा । जत्ति अक्खर लिहई, तत्तिअ लहुगा य आवज्जे ॥ ४५१ ॥

[बृहत्कल्पभाष्ये ॥ उ० ३]

१–अश्विन्यादीनीन्दुभुक्तानि भानि षष्टि (६०) हृतानि स्वभुक्तनाडीसंयुक्तं द्विघ्नं नन्द ९ हृतं त्रिधा अंशादि त्रिंशद्भागात-राश्यादि जायते चेष्टकालकः । उदयादिष्टकालस्तु षड्गुणस्तत्र योजयेत् ॥ २–यदा चन्द्रो मेषराशौ स्यात्तदा प्रवासाद्गणनीयं, यदा वृषराशौ तदा नष्टाद्गणनीयम् । एवं मिथुनादिराशिषु मृतादिभ्यो गणनीयम् । ३–यावत्या हि कर्मस्थितेः सम्यक्त्वं लभते तस्याः पल्योपमपृथक्त्वे क्षीणे देशविरतः श्रावको भवेत् ततः संख्यातेषु सागरेषु क्षीणेषु सर्वविरतिचरणं लभ्यते ॥ ४–ननु भावार्हदादीनामप्यत्र वन्दना क्रियते तत्कथं चैत्यवन्दना ? इत्युच्यते–सत्यं प्रायेणाऽस्याश्चैत्याग्रे करणात् तथा च बृहद्भाष्यं तथाहि भावेति । ५–'ठवणा जिणाण' इति पाठान्तरम् । ६–उत्सर्गतः=सामान्येन श्रुतं=सूत्रं नैव प्रमाणं न वा अप्रमाणं किन्तु पूर्वापराऽविरुद्धवृद्धसंप्रदायागतेन अर्थेन युक्तं प्रमाणम्, अन्यथा पुनरप्रमाणमित्येवं कुशलाः=तीर्थङ्करगणधरा बदन्ति, तथाहि–यथा किल कश्चिदन्धो देशान्तरं गन्तुमनाः स्वयं मार्गमपश्यन् पंगुं गन्तुमशक्तं चक्षुष्मत्तया स्कन्धे निवेश्य वहति, स चापि पङ्गुर्द्वयोरपि=आत्मनस्तस्य हिताय=गर्त्ताप्रपाताद्युपद्रवरक्षणाय पन्थानं=मार्गम् तं कथयति एवं परमार्थेनाऽ-प्रबोधितं यदन्धस्थानीयं सूत्रं, तद् यदा पङ्गुस्थानीयमर्थमात्मन उपरि कृतं वहति तदा सोऽप्यर्थः सूत्रनिश्रया गच्छन् सम्य-ग्विषयविभागदर्शितया निष्प्रत्यपायं मुक्तिमार्गमुपदिशतीत्यतः=अर्थसव्यपेक्षमेव सूत्रं प्रमाणमिति ॥

"Aho Shrut Gyanam"

विती उ सुवण्णस्स, बारस अद्धं च सयसहस्साइं । तावइअं चिअ कोडी, पीईदाणं तु चक्कीणं ॥ ४५२ ॥ एतं चेव पमाणं, नवरं रययं तु केसवा दिंति । मंडलिआण सहस्सा, विती पीई सयसहस्सा ॥ ४५३ ॥ भत्तिविभवाणुरूवं, अन्ने वि अ दिंति इब्भमाईआ । सोऊण जिणागमणं, निउत्तमनिओइएसुं वा ॥ ४५४ ॥

[श्रीबृहत्कल्पभाष्ये गा० १२०७-९ ३७४ पत्रे ॥]

इक्केण सुद्ध अच्छं,-बिलेण इअरेहिं दोहिं उववासो । नवकारसहिअएहिं, पणयालीसेहिं उववासो ॥ ४५५ ॥

[योगविधौ ॥]

गच्छंमि एस कप्पो, वासावासे तहेव उडुबद्धे । गाम-नगर-निगमेसुं, [1]अइसेसी ठावए सड्ढी ॥४५६॥ [2]किं कारणं चमढणा, दव्वक्खओ उग्गमो वि य न सुज्झे । गच्छंमि नियय कज्जं, आयरिय १ गिलाण २ पाहुणए ३ ॥ ४५७ ॥

[श्रीबृहत्कल्प भाष्ये गा० १५८३-४ ॥]

रयणियर १ दिणयराणं २, नक्खत्ताणं ३ महग्गहाणं च ४ । चारविसेसेण भवे, सुहदुक्खविही मणुस्साणं ॥ ४५८ ॥

[जीवाभिगमसूत्रे ३३४ पत्रे वृत्तौ च सूरप्रज्ञप्तौ २-३ प्राभृते च ॥]

[3]पडिणीअ १ तेण २ सावय ३, उब्भामग ४ गोण ५ साण ६ अणप्पज्झे ७ । सीअं च दुरधिआसं ८, दीहा ९ पक्खीव १० सागरिए ११ ॥ ४५९ ॥ [4]अहि १ सावय २ पच्चत्थिसु ३, गुरुगा सेसेसु हुंति चउलहुगा । तेणे गुरुगा, लहुगा आणाइ विराहणा दुविहा ॥ ४६० ॥

[बृहत्कल्पभाष्यवृत्तौ गा० २३५८-६० ६६८ पत्रे ॥]

दंडकवाडे मंथंतरे अ संहरणया सरीरत्थे । भासाजोगनिरोहे, सेलेसी सिज्झणा चेव ॥ ४६१ ॥

[विचारग्रन्थे ॥]

[5]कारणसंविग्गाणं, आहारादीहिं तप्पए जो उ । नीआवित्तणुतप्पी, तप्पक्खिअ वण्णवाई अ ॥४६२॥

[व्यवहारभाष्ये ३ उद्देशके ॥]

१-'अइसेसी'ति, अतिशेषाणि स्निग्धमधुरद्रव्याणि यत्र प्राप्यन्ते तानि कुलानि अतिशायीनि 'सड्ढि'त्ति दानश्रद्धावन्ति एवंविधानि कुलानि स्थापयेत् आचार्यः । २-किमित्याह—'किं कारण'मित्यादि । कुलस्थापना क्रियते स्थापनाकुलेषु एकं गीतार्थसंघाटकं मुक्त्वा येनान्ये साधवो न प्रविशन्ति ॥ ४-आह-किं तत्कारणं येन द्वारं पिधीयते? उच्यते-'पडिणीये'त्यादि, उद्घाटिते द्वारे प्रत्यनीकः प्रविश्य हननमपद्रावणं वा कुर्यात् १, स्तेनाः-शरीरस्तेना उपधिस्तेना वा प्रविशेयुः २, एवं श्वापदाः सिंहव्याघ्रादयः ३, उद्भ्रामकाः-पारदारिकाः ४, गौर्बलीवर्दः ५, श्वा-प्रतीतः ६, एते वा प्रविशेयुः । 'अणप्पज्झेति,'-अनात्मवशः-क्षिप्तचित्तादिः स द्वारेऽपिहिते सति निर्गच्छेत् ७, शीतं वा दुरधिसहं हिमकणानुषक्तं निपतेत् ८, दीर्घा वा-सर्पाः ९, पक्षिणो वा काककपोतप्रभृतयः विशेयुः १०, सागारिको वा कश्चित्प्रतिश्रयमुद्घाटितद्वारं दृष्ट्वा तत्र प्रविश्य शयीत वा विश्रामं वा गृह्णीयात् ११ । ४-अहि० अहिषु १ श्वापदेषु २ प्रत्यर्थिषु ३ वा प्रत्यनीकेषु प्रत्येकं चत्वारो गुरुगाः, शेषेषु उद्भ्रामकादिषु सागारिकान्तेषु चतुर्लघुकाः, स्तेनेषु गुरुका लघुकाश्च भवन्ति, तत्र शरीरस्तेनेषु चतुर्गुरुकाः उपधिस्तेनेषु चतुर्लघुकाः । आज्ञादयश्च दोषाः । विराधनाश्च संयम विराधना-आत्मविराधना द्विविधा तत्र संयमविराधना-स्तेनैरुपधावपहृते । तृणग्रहणमग्निसेवनं वा कुर्वन्ति, सागारिकादयो वा तप्ताऽयोगोलकल्पाः प्रविष्टाः सन्तो निषदनं शयनादि कुर्वाणा बहूनां प्राणजातीयानामुपमर्दनं कुर्युः, आत्मविराधना तु प्रत्यनीकादिभिः परिस्फुटैव ॥ ५-कारण० कारणेषु=अशिवाऽवमौदर्यादिषु सुसंविग्नानां सुसंयतानामाहारादिभिस्तर्पितः प्रत्यर्पणं कृतवान्, तथा यः संविग्नानां नीचैर्वृत्तिवर्त्तनं यस्य स तथा, किमुक्तं भवति? स तान् वन्दते न पुनर्दोषयति तथा अकल्पं किमपि प्रतिसेव्य अनु-पश्चात् 'हा दुष्टं कृतं हा दुष्टं कारित'-मित्यादिरूपेण तपति सन्तापमनुभवतीत्येवंशीलोऽनुतापी, तथा तेषां संविग्नानां पक्षस्तत्पक्षः, तत्र भवस्तत्पाक्षिकः सुसं-

"Aho Shrut Gyanam"

विहवाणुसारओ[1] पुण, सड्ढेणं संजयाण दायव्वं । गुणविरहिआणमुचिअं, सगुणाण पुणो सुभत्तीए ॥ ४६३ ॥

[जीवानुशासनसूत्रे ६ अधिकारे २७ पत्रे ॥]

तित्थाइसेससंजय १, देवी वेमाणियाण २ समणीओ ३ । भवणवइवाणमंतर २, जोइसियाणं च देवीओ ॥ ४६४ ॥ भवणवई १ जोइसिया २, बोधव्वा वाणमंतरसुरा य ३ । वेमाणिआ य १ मणुया २, पयाहिणं जं च निस्साए ॥ ४६५ ॥ केवलिणो तिउण जिणं, तित्थपणामं च मग्गओ तस्स । मणमाईवि णमंता, वयंति सट्ठाण सट्ठाणं ॥ ४६६ ॥ इंतं महड्ढिअं पणिवयंति ठियमवि वयंति पणमंता । नवि जंतणा न विकहा, न परोप्परमच्छरो न भयं ॥ ४६७ ॥ विरओ जो पुण जाणं, कुणति १ अजाणं च अप्पमत्तो व २ । तत्थवि अज्झत्थसमा, संजायइ निज्जरा न चओ ॥ ४६८ ॥ अस्सायमाइआओ, जावि अ असुहा हवंति पगडीओ । निंबरससल्लवोव पए, न होंति ता असुहया तस्स ॥ ४६९ ॥

[इदं (४६४-४६९) गाथाषट्कं श्रीबृहत्कल्पभाष्ये आवश्यकनिर्युक्तिवृत्तौश्च २३२ पत्रे ॥]

इअ वीसं बावन्नं, च जिणहरे गिरिसिरेसु संथुणिमो । इंदाणरायहाणिसु, बत्तीसं सोलसयं वंदे ॥४७०॥

[नन्दीश्वरस्तोत्रे ॥]

चत्वारोऽञ्जनशैलगा दधिमुखोत्तंसश्रियः षोडश, द्वात्रिंशच्च निदेशतो रतिकरेष्वेवं द्विपञ्चाशतम् । इन्द्राणां वरराजधान्युपगता द्वात्रिंशतोऽमूश्चतु,-र्युक्ताशीतिमहं जिनेन्द्रनिलयान् वन्दे सु नन्दीश्वरे॥४७१॥

[नन्दीश्वरस्तोत्रवृत्तौ ॥]

एगारस अंगाइं, कालिअसुत्तं [वयंति] भणंति तत्तन्नू । दिट्ठीवाओ सव्वो, न होइ कालियसुअं निअमा ॥ ४७२ ॥ कालिअसुअस्स कालो, भणिअं अज्झयणगुणणविसयाइं । दिवसस्स पढमपच्छिम-जामा एवं तिजामाए ॥ ४७३ ॥

[इदं गाथाद्वयं यतिदिनचर्यायां ८४ पृ० ॥]

एसा जिणाण आणा, खित्ताईआ[2] य कम्मुणो भणिआ । उदयाइकारणं जं, तम्हा सव्वत्थ जइअव्वं ॥ ४७४ ॥

[श्रीसूर्यप्रज्ञप्तिसूत्रे पञ्चवस्तुके जीवाभिगमवृत्तौ ३३९ पत्रे च ॥]

प्रभास्वं[3] १ ब्रह्महत्या च २, दरिद्रस्य च यद्धनम् ३ । गुरुपत्नी ४ देवद्रव्यं ५, स्वर्गस्थमपि पातयेत् ॥ ४७५ ॥

[इति श्राद्धविधौ ७७ पत्रे ॥]

विम्रपाक्षिक इत्यर्थः, तथा वर्णवादी श्लाघाकारी विहितानाम् । ततः किम् ? इत्याह—"**पावस्स उवचियस्स विपडिसाडणे**"—त्यादि, एवममुना प्रकारेण संविग्नतर्पणादिना अद्यापि पार्श्वस्थेन सतोपनीतं तथापि तस्य पापस्य परिशातनभावं करोति, इत्यादि **व्यवहारभाष्यवृत्तौ** ३ उद्देशके ॥ १-**विहवा०** विभवानुसारतो निज द्रव्यौचित्येन पुनः श्राद्धेन श्रावकेन संयतेभ्यः साधुभ्यो दातव्यं देयं किमविशेषेण ? इत्याह—गुणविरहितानां ज्ञानादिगुणशून्यानामुचितं योग्यं, सगुणानां पुनर्विशिष्टज्ञानादिवतां सुभक्त्या आन्तरप्रीत्येति गाथार्थः ॥ २-**खित्ता०** शुभक्षेत्रे शुभा दिशमभिमुखीकृत्य शुभतिथिनक्षत्रमुहूर्त्तादौ प्रव्राजनव्रतारोपणादि कर्त्तव्यं नान्यथा । अपि च क्षेत्रादयोऽपि कर्मणामुदयादिकारणं भगवद्भिरुक्ताः, ततोऽशुभद्रव्यक्षेत्रादिसामग्रीं प्राप्य कदाचिदशुभवेद्यानि कर्माणि विपाकं गत्वा उदयामासादयेयुः, तदुदये च गृहीतव्रतभङ्गादिदोषप्रसङ्गः । शुभद्रव्यक्षेत्रादिसामग्र्यां तु प्रायो नाशुभकर्मविपाकसंभव इति निर्विघ्नं सामायिकादिपालनं नियमादवश्यं छद्मस्थेन सर्वत्र शुभक्षेत्रादौ यतितव्यम् ॥ इति श्रीसूर्यप्रज्ञप्तिवृत्तौ ॥ ३ साधारणद्रव्यम्—इत्यर्थः ॥

"Aho Shrut Gyanam"

[1]आयरिए गच्छंमि अ, कुलगणसंघे अ चेइअविणासे । आलोइअपडिकंतो, सुद्धो जं निज्जरा विउला ॥ ४७६ ॥

[श्रीबृहत्कल्पभाष्ये ३ खण्डे गा० २९६३-८३७ पत्रे ॥]

[2]मुल्लं विणा जिणाणं, उवगरणं चमरछत्तकलसाई । जो वावरेइ मूढो, निअकज्जे सो हवइ दुहिओ ॥ ४७७ ॥ नीअगोअं खवे कम्मं, उच्चगोअं निबंधई [ए] । सिढिलं कम्मगंठिं तु, वंदणेणं नरो करे ॥ ४७८ ॥

[इदं गाथाद्वयं श्रीरत्नशेखरसूरिकृते श्राद्धविधिप्रकरणे ७९ पत्रे ॥]

गुरुवंदणमवि तिविहं, तं फिट्टा १ छोभ २ बारसावत्तं ३ । सिरिनमणाइसु पढमं १, पुण्णखमासमणदुगि बीअं ॥ ४७९ ॥ तइअं तु वंदणदुगे ३, नमिहो आइमं सयलसंघे । बीअं तु दंसणेण य, पयट्ठिआणं च तइअं तु ॥ ४८० ॥

[इदं गाथाद्वयं भाष्यसत्कं श्राद्धविधिप्रकरणे ॥]

[3]अविसहणाऽतुरिअगई, अणाणुवत्ती अ अवि गुरूणंपि । खणमित्तपीइरोसा, गिहिवच्छलया य संचइआ ॥ ४८१ ॥

[बृहत्कल्पभाष्ये ॥]

संपाइमरयरेणू, पमज्जणट्ठा वयंति मुहपोत्तिं । नासं मुहं च बंधइ, तीए वसहिं पमज्जंतो ॥४८२॥

[इति पूजापञ्चाशके ॥]

[4]आययणं निस्सकडं, पव्वतिहीसुं च कारणे गमणं । इअराभावे तस्सत्ति भाववुड्ढित्थमोसरणं ॥४८३॥ पूरिंति समोसरणं, अन्नासइ निस्सचेइएसुं पि । इहरा लोगविरुद्धं, सद्धाभंगो असड्ढाणं ॥ ४८४ ॥

[इति चैत्यवन्दनकुलकवृत्तौ ४९ पत्रे ॥]

तित्थयरो चउनाणी, सुरमहिओ सिज्झियव्वे य धुवम्मि । अणिगूहिअबलविरिओ, सव्वत्थामेण उज्जमई ॥ ४८५ ॥

[इति तपागच्छीयश्रीरत्नशेखरसूरिकृते श्रीआचारप्रदीपे ॥]

[5]पाणीहि उ संसत्ता, पडिलेहा होइ केवलीणं तु । संसत्तमसंसत्ता, छउमत्थाणं तु पडिलेहा ॥४८६॥ [6]संसज्जइ धुवमेयं, अपेहिअं तेण पुव्व पडिलेहा । पडिलेहिअंमि संसज्जइत्ति संसत्तमेव जिणा ॥४८७॥

[श्रीओघनिर्युक्तौ १०५ पत्रे ॥]

१-**आयरिए०** आचार्यस्य वा गच्छस्य वा कुलस्य वा चैत्यस्य वा विनाशे उपस्थिते सति सहस्रयोधिप्रभृतिना स्ववीर्यमहापयता तथा पराक्रमणीयं यथा तेषामाचार्यादीनां विनाशो नोपजायते, स च तथा पराक्रममाणो यद्यपराधमापन्नस्तथापि आलोचितप्रतिक्रमतः शुद्धः गुरुसमक्षमालोच्य मिथ्यादुष्कृतदानमात्रेणैवासौ शुद्धः इति भावः, कुतः ? इत्याह—यद्यस्मात्कारणाद्विपुला महती निर्जरा कर्मक्षयलक्षणा तस्य भवति पुष्टालम्बनमवलम्ब्य भगवदाज्ञया प्रवर्त्तमानत्वादिति ॥ २-**मुल्लं०** देवसत्कं च झल्लरीमेर्यादि गुरूणामपि सङ्घस्यापि वाऽग्रे न वाद्यम् । केचित्त्वाहुः-पुष्टालम्बने यदि देवझल्लर्या व्यापार्यते तदा पूर्वं बहुनिष्क्रयो देवस्य मोच्यो यतः-'**मुल्ल०**'मित्यादि । ३-**अविसहणा०** सर्वसाधूनामवर्णवादमाह-अहो अमी साधवोऽविषहणा न कस्यापि पराभवं सहन्ते अपि तु स्वपक्षपरपक्षापमाने संजाते सति देशान्तरं गच्छन्ति । '**तुरियगई**'त्ति अकारप्रश्लेषादत्वरितगतयः मायया लोकावर्जनाय मन्दगामिनः अननुवर्त्तिनः प्रकृत्यैव निष्ठुराः गुरूणामपि महतामपि आस्तां सामान्यलोकस्य इत्यपिशब्दार्थः । द्वितीयोऽपि शब्दः संभावनायां, संभाव्यन्ते एवंविधा अपि साधव इति क्षणमात्रप्रीतिरोषाः तदैव रुष्टास्तदैव च तुष्टा अनवस्थितचित्ता इत्यर्थः, गृहिवत्सलास्तैस्तैश्चाटुवचनैरात्मानं गृहस्थस्य रोचयन्ति अतिसंचयितः सुबहुवस्त्रकम्बल्यादिसंग्रहशीला लोभ बहुला इति भावः । इति **बृहद्भाष्यवृत्तौ** ॥ ४-अनयोर्वृत्तिस्तत्र-केवलिनः प्रत्युपेक्षणां प्रतिपादयन्नाह-'**आययण०**'मित्यादि । ५-'**पाणीहि**'प्राणिभिः संसक्तं यद्द्रव्यं तद्विषया प्रत्युपेक्षणा भवति केवलिनां । संसक्तद्रव्यविषया १ असंसक्तद्रव्यविषया २ च छद्मस्थानां प्रत्युपेक्षणा भवति । ६-अन्येन वा कारणेन केवलिनः प्रत्युपेक्षणां कुर्व्वन्तीति दर्शयन्नाह-'संसिज्जइ-' संसज्यते प्राणिभिः सह संसर्गमुपयाति'ध्रुवम्'-अवश्यमेतद् वस्त्रादि अप्रत्युपेक्षितं सत् तेन पूर्वमेव

"Aho Shrut Gyanam"

भुंजइ अणंतरेणं, दुन्नि उ वेलाउ जो निओगेणं । सो पावे उववासा, अट्ठावीसं तु मासेणं ॥४८८॥ दसवरिससहस्साउं, भुंजइ जो अण्णदेवयाभत्तो । पलिओवमेकोडी पुण, होइ ठिई जिणवरतवेणं ॥४८९॥

[इदं गाथाद्वयं श्रीपद्मचरित्रे श्राद्धविधिकौमुद्यां श्रीरत्नशेखरसूरिणाऽपि उक्तं तथा ॥]

संघाडगस्स गुच्छो, अणेगजीवो उ होइ नायव्वो । पत्ता पत्तेअजीआ, दुन्नि अ जीवा फले भणिआ ॥ ४९० ॥

[श्रीप्रज्ञापनायां प्रथमे पदे, वनस्पतिसप्ततिकायां च ॥]

महु १ मक्खण २ संघाडग ३ गोरसजं बिदल ४ जाणिअमणंतं ५ । अण्णायफल ६ वयंगण ७, पंचुंबरिमवि ८ न भुंजंति ॥ ४९१ ॥

[श्रीजिनवल्लभसूरिकृतश्राद्धकुलके श्रावकाणामभक्ष्यनियमाधिकारे श्रीचन्द्राचार्यकृतयोगविधावपि]

जं नाण १ दंसण २ चरित्त ३ भावओ तव्विवक्खभावाओ । भवभावओ य तारेइ, तेण तं भावओ तित्थं ॥ ४९२ ॥ [३]दाहोवसमादिसु वा, जं तिसु थिय महवदंसणाईसुं । तो तित्थं संघो च्चिअ, उभयं च विसेसणविसेसं ॥ ४९३ ॥ [४]अहवा सम्मदंसण-नाणचरित्ताइं तिन्नि जस्सऽत्था । तं तित्थं पुव्वोविअमिहमत्थो वत्थुपज्जाओ ॥ ४९४ ॥

[इदं गाथात्रयं श्रीस्थानाङ्गटीकायां प्रथमाध्ययने ३३ पत्रे ॥]

[५]उवसामगसेढिगयस्स होइ उवसामिअं तु सम्मत्तं । जो वा अकयतिपुंजो, अखविअमिच्छो लहइ सम्मं ॥ ४९५ ॥ खीणंमि उदिण्णंमि, अणुदिज्जंते असेसमिच्छत्ते । अंतोमुहुत्तकालं उवसमसम्मं लहइ जीवो ॥ ४९६ ॥

[इति श्रीस्थानाङ्गवृत्तौ २ स्थाने ४८ पत्रे]

संकप्पो संरंभो १ परितावकरो भवे समारंभो । आरंभो उद्दवओ ३, सुद्धनयाणं तु सव्वेसिं ॥४९७॥

[स्थानाङ्गे ३ स्थाने १ उद्देशके वृत्तौ १०८ पत्रे ॥]

सुअनाणम्मि अभत्ती १ लोगविरुद्धं २ पमत्तछलणा य ३ । विज्जासाहणवेगुण्ण ४ धम्मया ५ एव मा कुणसु ॥ ४९८ ॥

[स्थानाङ्गवृत्तौ ४ स्थाने २ उद्देशके २१४ पत्रे ॥]

जिनाः-केवलिनः प्रत्युपेक्षणां कुर्वन्ति, यदा तत् पुनरेवं संविद्यते इदमिदानीं वस्त्रादिकं प्रत्युपेक्षितमपि उपभोगकाले संसज्यते तदा संसक्तमेव जिनाः-केवलिनः प्रत्युपेक्षन्ते न त्वनागतमेव पलिमन्थदोषादिति ॥ १-भुंजइ० भोजनताम्बूलजलव्यापारणादौ हि प्रत्यहं प्रत्यहं घटीद्वय-घटीद्वय-संभवे मासे एकोनात्रिंशद्घटीचतुष्टयं भवेत्, अष्टाविंशतिरुपवासाः, यदुक्तं पद्मचरित्रे-'भुंजइ०' इत्यादि गाथाद्वयम् । २-भावतीर्थं सङ्घो यतो ज्ञानादिभावेन तद्विपक्षादज्ञानादितो १ भवाच्च २ भावभूतात्तारयतीत्याह- 'जंनाण०' इत्यादि । ३-त्रिषु वा क्रोधाग्निदाहोपशम १ लोभतृष्णानिरास २ कर्ममलापनय ३ लक्षणेषु ज्ञानादिलक्षणेषु वा अर्थेषु तिष्ठतीति त्रिस्थम्, आह-'दाहोव०' ४-त्रयो ज्ञानादयोऽर्था वस्तूनि यस्य तद् त्र्यर्थम्, आह च 'सम्मं०' इत्यादि ५-इहोपशमिकीं श्रेणिमनुप्रविष्टस्यानन्तानुबन्धिनां दर्शनमोहनीयत्रयस्य चोपशमादौपशमिकं भवति १ जो वा अनादिमिथ्यादृष्टिरकृतत्रिपुञ्जक एवाक्षीणमिथ्यादर्शनोऽक्षपक इत्यर्थः, सम्यक्त्वं प्रतिपद्यते तस्यौपशमिकं भवतीति; ॥ आरम्भः पृथिव्याद्युपमर्दनम् १ संरम्भः पृथिव्यादिविषये एव मनःसंक्लेशः २, समारम्भस्तेषामेव सन्तापः ३ अथवा इतत्रिपथकः ॥ अरिहन्त १ सिद्ध २ चेइय ३ सुए य ४ धम्मे य ५ साहुवग्गेय ६ आयरिय ७ उवज्झाए, ८ पवयणे ९ दंसणे विणओ ॥ १ ॥ इति दशविधो विनयः २ । वायण १ पुच्छणा २ चेव, तहेव परियट्टणा ३ अणुप्पेहा ४ धम्मकहा ५, सज्झाओ पंचहा भवे ॥ २ ॥ इति पञ्चविधः स्वाध्यायः २ । ऊणोदरियं पणहा, समासेण वियाहियं दव्वओ १ खित्त २ कालेणं ३ भावेणं ४ पज्जवेहि ५ य ॥ ३ ॥ इति ऊनोदरीप्रकारः ६ । उत्तरा० । अकाले स्वाध्यायकरणे एतानि दूषणानि 'सुअनाणे'त्यादि—

"Aho Shrut Gyanam"

खण्डिते १ संधिते २ छिन्ने, ३ रक्ते ४ रौद्रे च ५ वाससि । दानं १ पूजा २ होमं ३, स्वाध्यायो ४ विफलं भवेत् ॥ ४९९ ॥

[श्री उमास्वातिवाचकविनिर्मितपूजाप्रकरणे १६ गाथा ॥]

आलोयण १ पडिकमणे २, मीस ३ विवेगे ४ तहा विउस्सग्गो ५ । तव ६ छेअ ७ मूल ८ अणवट्ठिया अ ९ पारंचिए १० चेव ॥ ५०० ॥

[इति दशविधप्रायश्चित्तः ॥]

पडिकमणे १ सज्झाए २, काउस्सग्गा ३ वराह ४ पाहुणए ५ । आलोअण ६ संवरणे ७, उत्तमट्ठे अ ८ वंदणयं ९ ॥ ५०१ ॥

[हेतुगर्भे श्रीआवश्यकनिर्युक्तौ च ॥]

[1]जाहेवि तह न तरे, ताहे निविट्ठेग पाउणे खोमे । तेण वि असंथरं तो, दो खोमि पाउणे ताहे ॥५०२॥

[तहवि असंथरं तो तइअं ओण्णि पाउणेइति ॥]

[श्रीओघनिर्युक्तौ भाष्ये, एवं सन्देहदोलावलीसूत्रेऽपि ६९ पत्रे । तथाहि]

उस्सग्गनयेणं सावगस्स परिहाणसाडगादवरं । कप्पइ पाउरणाई, न सेसमववायओ तिन्नि ॥ ५०३ ॥ एवं कयसामइआवि साविगा पढमनयमएणेह । कडिसाडग १ कंचुय २ मुत्तरिज्ज ३ वत्थाणि धारेइ ॥ ५०४ ॥

[सन्देहदोलावल्यां गा० ४६–४७ ६८–६९ पत्रे, पुनस्तत्रैव गा० ४८ ॥]

बीअपएणं तिण्हुवरि, तिहिं उ वत्थेहिं पाउअंगी उ । सामाइअवयं पालइ, तिपयं परिहरइ पडि-[2]कमणे ॥ ५०५ ॥ जो पुण सिलिआइविणा, मुहसुद्धिमित्थ काउमसमत्थो । सो कडुअकसायरसं, सिलिअं गिण्हइ न से भंगो ॥ ५०६ ॥

जं [3]अन्नाणी कम्मं, खवेइ बहुआहिं वासकोडीहिं । तं नाणी तिहिं गुत्तो, खवेइ ऊसासमित्तेणं ॥५०७॥

[श्रीसमवायाङ्गसूत्रे बृहत्कल्पभाष्ये गा० ११७० पञ्चवस्तुक सूत्रे २१२ पत्रे ॥]

[5]ओसरणे १ जिणभवणे २, उच्छुवणे ३ खीररुक्खवणखंडे ४ । गंभीरसाणुणाए, पमाइपसत्थ-खित्तंमि ॥ ५०८ ॥

[पञ्चवस्तुसूत्रे गा० १०९ ॥]

सो [6]हु तवो कायव्वो, जेण मणोऽमंगलं न चिंतेई । जेण न इंदिअहाणी, जेण य जोगा न हायंति ॥ ५०९ ॥

१–जाहे० श्रावकः सामायिकस्थ उत्कृष्टः अप्रावरण एव तिष्ठति तदानीं तस्य यतीभूतत्वात् । अपवादस्तु कौ तदाह शीतादिकारणमाश्रित्य त्रीणि उत्तरीयाणि प्रावरीतुं कल्पन्ते नाधिकानि, तान्यपि कालप्रतिलेखितानि यतिवृत्तित्वात्, यतीनां च शीताद्यपवादे कल्पत्रयस्य क्रमेण प्रावरणमुक्तम् 'ओघ०' यत एव प्रावरणपरिभोगः अपवादिकोऽत एवासौ परिधानादन्यद्वस्त्रं शीतदंशमशकादिकारणतः प्रतिसेवितुकाम एव सामायिकग्रहणक्षणे प्रावरणं संदेशयति नान्यथा यथा उष्णकालादौ ॥ २–कृत० सामायिकश्राविकाया वस्त्रमुत्सर्गतः, अपवादे तु षट्कं परं प्रतिक्रमणे आपवादिकवस्त्रत्रयं परिहरति ॥ ३–'जं अन्नाणी०' यदज्ञानी कर्म क्षपयत्यसंवेगाद्बह्वीभिर्वर्षकोटीभिस्तत् ज्ञानी तिसृभिर्गुप्तः सन् गुप्तिभिः क्षपयत्युच्छ्वासमात्रेणेति गाथार्थः ॥५०७॥ पञ्चवस्तुकवृत्तौ श्रीहरिभद्रसूरिकृतायाम् । ५–कस्मिन् क्षेत्रादौ प्रव्रज्या दातव्या ? इत्येतदाह 'ओसरणे०' समवसरणे भगवदध्यासिते क्षेत्रे वृत्ते तद्भावो वा १ जिनभवने=अर्हदायतने २ 'इक्षुवने' प्रतीते ३ क्षीरवृक्षवनखण्डे= अश्वत्थादि वृक्षसमूहे ४ गम्भीरसानुनादे महाभोगप्रतिशब्दवति ५ एवमादौ प्रशस्तक्षेत्रे, आदिशब्दात् प्रदक्षिणावर्त्तजल-परिग्रह इति गाथार्थः ॥ ५०८ ॥ ६ –'सो हु–' तद्धितपः कर्त्तव्यमशनादि येन मनोमङ्गलम्=असुन्दरं न चिन्तयति शुभाध्यवसायिनिमित्तत्वात् कर्मक्षयस्य तथा येन नेन्द्रियहानिस्तद्भावे प्रत्युपेक्षणाद्यभावात् येन नव योगा चक्रवालसमाचार्यन्तर्गता व्यापारा न हीयंते इति गाथार्थः ॥ ५०९ ॥

"Aho Shrut Gyanam"

न य किंचि अणुन्नायं, पडिसिद्धं वावि जिणवरिंदेहिं । तित्थगराणं आणा, कज्जे सच्चेण होअवं ॥ ५१० ॥

[श्रीपञ्चवस्तुकसूत्रे २५१ पत्रे ॥]

जो हुज्ज उ असमत्थो १, बालो २ वुड्ढो व ३ रोगिओ वावि । सो आवस्सयजुत्तो, अच्छिज्जा निज्जरापेही ॥ ५११ ॥

सम्मत्तंमि उ लद्धे, पलिअपुहुत्तेण सावगो हुज्जा [होइ] । चरणोवसमखयाणं, सागरसंखंतरा होई ॥ ५१२ ॥

[पंचवस्तुकसूत्रे २५८–२७५ पत्रे प्रवचनसारोद्धारेऽपि ॥]

जे दंसणवावन्ना, लिंगग्गहणं करिंति सामण्णे । तेसिं पि अ उववाओ, उक्कोसो जाव गेविज्जे ॥५१३॥

[पञ्चवस्तुकसूत्रे २८० पत्रे ॥]

उद्दिट्ठकडं भुंजइ १, छक्कायपमद्दणो २ घरं कुणइ ३ । पच्चक्खं च जलगए, जो पियइ ४ कहण्णु सो साहू ॥ ५१४ ॥

[पञ्चवस्तुकसूत्रे १२०२ गाथा २८६ पत्रे ॥]

सुव्वइ य वयररिसिणा, कारवणंपि हु अणुट्ठिअमिमस्स । वायगगंथेसु तहा, एअगया देसणा चेव ॥ ५१५ ॥

[पञ्चवस्तुकसूत्रे गाथा १२२७ २८७ पत्रे ॥]

एअगुणविप्पमुक्को, जो देइ गणं पवत्तिणिपयं वा । जोऽवि पडिच्छइ नवरं, सो पावइ आणमाईणि ॥ ५१६ ॥

वूढो गणहरसद्दो, गोअमपमुहेहिं पुरिससीहेहिं । जो तं ठवइ अपत्ते, जाणंतो सो महापावो ॥ ५१७ ॥ कालोचिअगुणरहिओ, जो अ ठवावेइ तह निविट्ठंपि । णो अणुपालइ सम्मं, विसुद्धभावो ससत्तीए ॥ ५१८ ॥ एव पवत्तिणिसद्दो, जो वूढो अज्जचंदणाईहिं । जो तं ठवइ अपत्ते, जाणंतो सो महापावो ॥ ५१९ ॥

[पञ्चवस्तुकसूत्रे गा० १३१८ तः गा० १३२१ २९० पत्रे ॥]

आवस्सि १ णिसीहि २ मिच्छा ३, पुच्छण ४ सुवसंपयंमि गिहिएसु ५। अण्णा सामायारी, न होइ से सेसिआ पंच ॥ ५२० ॥ आवस्सिअं १ निसीहिअ २ मोत्तुं उवसंपयं च गिहिएसु ३। सेसा सामायारी, न होइ जिणकप्पिए सत्त ॥ ५२१ ॥

[पञ्चव० गा० १४२३–१४२४ २९४ पत्रे ॥]

आयारवत्थु तइअं, जहण्णयं होइ नवमपुव्वस्स । तहियं कालण्णाणं, दस उक्कोसेण भिण्णाइं ॥ ५२२ ॥ पढमिल्लुयसंघयणा, धिईऍ पुण वज्जकुड्डसामाणा । पडिवज्जंति इमं खलु, कप्पं सेसाओ ण उ कयाइ ॥ ५२३ ॥

[पञ्चवस्तुकसूत्रे गाथा १४२९–१४३० २९४ पत्रे ॥]

१–नैव किञ्चिदनुज्ञातम् एकान्तेन प्रतिषिद्धं वापि जिनवरेन्द्रैर्भगवद्भिः किन्तु तीर्थङ्कराणामाज्ञेयम् यदुत कार्ये सत्येन भवितव्यं न मातृस्थानतो यत्किञ्चिदवलम्बनीयमिति गाथार्थः ॥ ५१० ॥ २–संहननद्वारमाश्रित्याह—'पढ०' प्रथमेल्लुकसंहननाः= ऋषभनाराचसंहनना इत्यर्थः । धृत्या पुनर्वज्रकुड्यसमानाः प्रधानवृत्तय इति भावः, प्रतिपद्यन्ते एनं खलु कल्पमधिकृतं जिनकल्पं, शेषा न तु कदाचित्तदन्यसंहनिन इति गाथार्थः ॥ ५२३ ॥ पञ्चवस्तुकवृत्तौ ॥

"Aho Shrut Gyanam"

[1]मासं निवसइ खित्ते, छवीहीओ अ कुणइ तत्थवि अ । एगेगमडइ कम्माइवज्जणत्थं पइदिणं तु ॥५२४॥ (पं. गा. १४५८) ॥ [2]एगाए वसहीए, उक्कोसेणं वसंति सत्त जणा । अवरोप्परसंभासं, वज्जिता कहवि जोएणं ॥५२५॥ (पं. गा. १४७८) ॥ [3]वीहीए एक्काए, एक्को च्चिअ पइदिणं अडइ एसो । अण्णे भणंति भयणा, सा य ण जुत्तिक्खमा णेआ ॥ ५२६ ॥ (पं. गा. १४७९) ॥ [4]विसघाइ १ रसायण २ मंगलत्थ ३ विणए ४ पयाहिणावत्ते ५। गुरुए ६ अडज्झ ७ ऽकुत्थे ८, अट्ठ सुवण्णे गुणा हुंति ॥ ५२७ ॥ (पं. गा. ११९२) ॥ [5]इअ मोहविसं घायइ १, सिवोवएसा रसायणं होइ २ । गुणओ अ मंगलत्थं ३ कुणइ ४ विणीओ ५ अ जोगत्ति ॥५२८॥ (पं. गा. ११९३) ॥ [6]मग्गाणुसारि पयाहिण ७, गंभीरो गुरुअओ तहा होइ । कोहग्गिणा अडज्झो, अकुत्थ सइ सीलभावेणं ॥ ५२९ ॥ (पं. गा. ११९४) ॥ जिणा बारसरूवाणि, थेरा चोद्दसरूविणो । अज्जाणं पणवीसं तु, अओ उड्ढं उवग्गहो ॥५३०॥ (पं. गा. ७७१) ॥ [8]पत्तं १ पत्ताबंधो २, पायट्ठवणं च ३ पायकेसरिया ४। पडलाइँ ५ रयत्ताणं ६, गोच्छओ ७ पायनिज्जोगो च ॥५३१॥ (पं. गा. ७७२) ॥ तिण्णेव य पच्छागा ३, रयहरणं चेव होइ मुहपोत्ती । एसो दुवालसविहो, उवही जिणकप्पियाणं तु ॥५३२॥ (पं. गा. ७७३) ॥ बिअतिअचउक्कपणगं, नवदस एक्कारसेव बारसगं । एए अट्ठ विगप्पा, उवहिंमि उ हुंति जिणकप्पे ॥ ५३३ ॥ (पं. गा. ७७५) ॥ एए चेव दुवालस, मत्तग अइरेग चोलपट्टो अ । एसो चोद्दसविहो, उवही पुण थेर कप्पंमि ॥ ५३४ ॥ (पं. गा. ७७९) ॥ एए चेव उ तेरस, अभिन्नरूवा हवंति विण्णेआ । उवहिविसेसा नियमा, चोद्दसमे कमढए चेव १४ ॥५३५॥ (पं. गा. ७८१) ॥ उग्गहऽ १५ णंतगपट्टो १६, अड्ढोरुअ १७ चलणिआ १८ य बोधवा । अब्भिंतर १९ बाहिनिअंसणी य २० तह कंचुए चेव २१ ॥ ५३६ ॥ (पं. गा. ७८२) ॥ ओकच्छिअ २२ वेकच्छिय २३ संघाडी २४ चेव खंधकरणी २५ अ । ओहोवहिम्मि एए, अज्जाणं पण्णवीसं तु ॥५३७॥ (पं. गा. ७८३) ॥ तिन्नि विहत्थी चउरंगुलं च भाणस्स मज्झिम पमाणं । एत्तो हीण जहन्नं, अइरेगयरं तु उक्कोसं ॥५३८॥ (पं. गा. ७९२) ॥ इणमन्नं तु पमाणं, निअगाहाराओ होइ निप्फन्नं । कालप्पमाणसिद्धं, उदरपमाणेण य वयंति ॥५३९॥ (पं. गा. ७९३) ॥ [9]पत्ताबंधपमाणं, भाणपमाणेण होइ कायवं । जह गंठिम्मि कयंमी, कोणा चउरंगुला

१–मासकल्पद्वारावयवार्थमाह–'**मास०**' मासं निवसति क्षेत्रे एकं, षड्वीथीः करोति गृहपङ्क्तिरूपाः परिकल्प्य तत्रापि वीथीकदम्बके, एकैकामटति वीथीं कर्मादिवर्जनार्थम् अनिबद्धतया प्रतिदिनमिति गाथार्थः ॥ ५२४ ॥ २–'**एगाए०**' एकस्यां वसतौ बाह्यायां उत्कृष्टतो वसन्ति सप्त जनाः, कथमित्याह–परस्परं संभाषणं वर्जयन्तः सन्तः कथमपि योगेनेति गाथार्थः ॥ ५२५ ॥ ३–'**वीहीए०**' वीथ्यां त्वेकस्यामेक एव प्रतिदिनमटति एष जिनकल्पिकः, अन्ये भणन्ति–भजना, सा च न युक्तिक्षमा ज्ञेयाऽत्र वस्तुनीति गाथार्थः ॥ ५२६ ॥ ४–'**वीस०**' सुवर्णगुणानाह—विषघाति सुवर्णम् १, तथा रसायनं–वयःस्तम्भनम् २, 'मङ्गलार्थं' मङ्गलप्रयोजनम् ३, विनीतं–कटकादियोग्यतया ४, प्रदक्षिणावर्तं अग्नितप्तं प्रकृत्या ५, गुरु सारतया ६, अदाह्यं सारतयैव ७, अकुथनीयमत एव ८, एवमष्टौ सुवर्णे गुणा भवन्ति असाधारणा इति गाथार्थः ॥ ५२७ ॥ ५–दार्ष्टान्तिकमधिकृत्याह–"**इहमो०**" इति मोहविषं घातयति केषांचित् शिवोपदेशात् १, तथा रसायनं भवति० अत एव परिणतान् मुख्यं २ गुणतश्च मङ्गलार्थं करोति प्रकृत्या विनीतश्च योग्य इति कृत्वा एष गाथार्थः ॥ ५२८ ॥ ६–'**मग्गा०**' मार्गानुसारित्वं सर्वत्र प्रदक्षिणावर्तता गम्भीरश्चेतसा गुरुस्तथा भवति क्रोधाग्निना अदाह्यो ज्ञेयः, अकुथनीयः सदोचितेन शीलभावेनेति गाथार्थः ॥ ५२९ ॥ ७–पात्रादीनि उपधिमुपभुञ्जते इति वाक्यशेषः, एवं 'स्थविराः' पात्रादि १४ उपधिरूपवन्तः, आर्याणां संयतीनां पञ्चविंशतिरेव अत ऊर्ध्वम् औपग्रहिक उपधिः ॥ आर्या अधिकृत्याह—८–"पत्तं" गाहा "**पत्ता०**" ९–पात्रबन्धप्रमाणं किम् ? इत्याह–भाजनप्रमाणेन करणभूतेन भवति कर्त्तव्यम् । किंविशिष्टम् ? इत्याह–यावद् ग्रन्थौ कृते सति कोणौ चतुरङ्गुलौ भवतः त्रिकालविषयत्वात्सूत्रस्यापवादिकमिदं सदा ग्रन्थ्यभावात् इति गाथार्थः ॥ ५४० ॥

गाथा० ५

"Aho Shrut Gyanam"

होंति ॥ ५४० ॥ (पं. गा. ७९८) ॥ [1]पत्तगठवणं १ तह गोच्छओ अ२ पायपडिलेहिणी ३ चेव। तिण्हंपि ऊ पमाणं, विहत्थि चउरंगुलं चेव ॥ ५४१ ॥ (पं. गा. ७९९) ॥ [2]जेहि सविया न दीसइ, अंतरिओ तारिसा भवे पडला। तिण्णि व पंच व सत्त वा, कयलीपत्तोवमा सुहुमा (लहुया) ॥५४२॥ (पं. गा. ८०३) ॥ [3]गिम्हासु तिन्नि पडला, चउरो हेमंत पंच वासासु। उक्कोसगा एए एत्तो पुणमज्झिमे वोच्छं॥५४३॥ (पं. गा. ८०५) ॥ अड्डाइज्जा हत्था दीहा बत्तीसअंगुला रुंदा। बिइअं परिग्गहाओ, ससरीराओ उ निप्फन्नं॥ ५४४॥ (पं. गा. ८०६) ॥ माणं तु रयत्ताणे, भाणपमाणेण होइ निप्फन्नं। पायाहिणं करिंतं, मज्झे चउरंगुलं कमइ ॥ ५४५ ॥ (पं. गा. ८०८) ॥ कप्पा आयपमाणा, अड्डाइज्जा उ आयया हत्था। दो चेव सुत्तिआ, उन्निओ तइओ मुणेअव्वो ॥ ५४६ ॥ (पं.गा. ८१२) ॥ बत्तीसंगुलदीहं, चउवीसं अंगुलाइ दंडो से। सेस दसा पडिपुन्नं, रयहरणं होइ माणेणं॥ ५४७॥ (पं. गा. ८१४) ॥ चउरंगुलं विहत्थी, एअं मुहणंतगस्स उ पमाणं। बीओ वि अ आएसो, मुहप्पमाणाउ निप्फन्नं ॥ ५४८ ॥ (पं. गा. ८१६) ॥ जो मागहओ पत्थो, सविसेसयरं तु मत्तगपमाणं। दोसुवि दव्वग्गहणं, वासावासे अ अहिगारो ॥५४९॥ (पं. गा. ८१८) ॥ दुगुणो चउग्गुणो वा, हत्थो चउरस्स चोलपट्टो उ। थेरजुवाणाणऽट्ठा, सण्हे थुलंमि अ विभासा ॥ ५५० ॥ (पं. गा. ८२१) ॥ कमढपमाणं उदरप्पमाणओ संजईण विण्णेअं। सइगहणं पुण तस्सा, लहुसगदोसा इमासिं तु ॥ ५५१ ॥ (पं. गा. ८२४) ॥ दोन्नि तिहत्थायामा, भिक्खट्ठा एक्क एक्क उच्चारे। ओसरणे चउहत्था, निसण्णपच्छायणे मसिणा ॥५५२॥ (पं. गा. ८३१) ॥ पीढग–निसिज्ज–दंडग; पमज्जणी घट्टए डगलमाई। पिप्पलग सूइ नहरणि, सोहणगदुगं जहण्णो उ ॥ ५५३ ॥ (पं. गा. ८३४) ॥

[एताः त्रिंशद्गाथाः ३० श्रीपञ्चवस्तुके ॥]

ओअण १ वंजण २ पाणग ३, आयामु ४ सिणोदगं ५ च कुम्मासा ६। डगलग ७ सरक्ख ८ सूई ९, पिप्पलमाई १० उ उवओगो ॥ ५५० ॥

[श्रीपिण्डनिर्युक्तौ गाथा ३७–१७ पत्रे ॥]

जह कारणं तु तंतू, पडस्स तेसिं च हुंति पम्हाइं। नाणाइतिगस्सेवं, आहारो मोक्ख नेमस्स ॥५५१॥

[इति पिण्डनिर्युक्तौ गा० ७०–२८ पत्रे ॥]

निच्छयनयस्स चरणायविघाए नाणदंसणवहोऽवि। ववहारस्स उ चरणे, हयंमि भयणा उ सेसाणं५५२

[पिण्डनिर्युक्तौ १०५–४२ पत्रे ॥]

आणाए च्चिअ चरणं, तब्भंगे जाण किं न भग्गंति ?। आणं च अइक्कंतो, कस्सा एसा कुणइ सेसं ॥ ५५३ ॥ जो जहवायं न कुणइ, मिच्छद्दिट्ठी तओ हु को अन्नो। वड्ढेइ अ मिच्छत्तं, परस्स संकं जणेमाणो ॥ ५५४ ॥

[इति गाथाद्वयं 'निच्छय०'गाथा वृत्तिगतं ६९ पत्रे ॥]

१–पात्रस्थापनम् ऊर्णमयं, तथा गोच्छकश्च पात्रप्रतिलेखनी चैव मुहपोत्ती, एतेषां त्रयाणामपि प्रमाणं प्रस्तुतं वितस्तिश्चतुरङ्गुलं चैव षोडशाङ्गुलानीति ॥५४१॥ २–'जेहि०' यैः सविता आदित्यो न दृश्यते अन्तरितः सामान्येन तादृशानि भवन्ति स्वरूपेण पटलानि तानि च त्रीणि वा पञ्च वा सप्त वा, कालापेक्षया कदलीगर्भोपमानि मसृणश्लक्ष्णानि लघूनि बहुलकानीति गाथार्थः ॥५४२॥ ३–'गिम्हासु०' सामान्येन तादृशा भवन्ति स्वरूपेण पटलानि तानि च त्रीणि वा, ग्रीष्मेषु सर्वेष्वेव त्रीणि पटलानि भवन्ति कालस्यात्यन्तरूक्षत्वाद् द्रुतं पृथिवीरजःप्रभृतिपरिणतेः, तेन पटलभेदायोगादिति, चत्वारि पटलानि हेमन्ते कालस्य स्निग्धत्वात् विमर्देन पृथिवीरजःप्रभृतिपरिणतेः, तेन पटलभेदसंभवादिति, पञ्च वर्षासु सर्वास्वेव पटलानि भवन्ति कालस्यात्यन्तस्निग्धत्वात् अतिचिरेण रजःप्रभृतिपरिणतेः, तेन पटलभेदयोगादिति, 'उत्कृष्टान्येतानि' तत् स्वरूपापेक्षया चेहोत्कृष्टत्वपरिग्रहः, अत्यन्तशोभनानि पटलान्येवं भवन्ति अतः पुनः अत ऊर्ध्वं मध्यमानि स्वरूपेण पटलानि यावन्ति भवन्ति तावन्ति वक्ष्य इति गाथार्थः ॥ ५४३ ॥

"Aho Shrut Gyanam"

इंधण-धूमे गंधे, अवयवमाईहिं सुहुमपूईउ सुंदरमेयं पूई चोयग भणिए गुरू भणइ जेसिं तु एस पूई, सोही नवि विज्जए तेसिं ॥ ५५५ ॥ (पिं० २५८) इंधणअगणीअवयव, धूमो बप्फो अ अन्नगंधो अ । सवं फुसंति लोअं, भन्नइ सबं तओ पूई ॥ ५५६ ॥ (पिं० ५९) हत्थसयं खलु देसो, आरेणं होइ देसदेसो य । आइन्नंमि उ तिगिहा, ते चिअ उवओगपुवगा ॥ ५५७ ॥ जा जयमाणस्स भवे, विराहणा सुत्तविहिसमग्गस्स । सा होइ निज्जरफला, अज्झत्थविसोहिजुत्तस्स ॥५५८॥

[पिण्डनिर्युक्तौ गा० ११०-१७१८५ पत्रे ॥]

निरया उ नरभवम्मि अ, देवो होऊण पंचमे कप्पे। तत्तो चुओ समाणो, बारसमो अमम तित्थयरो ॥ ५४९ ॥

[इति रत्नसञ्चये ॥]

वाई अ १ खमासमणे २, दिवायरे ३ वायग ४ त्ति एगट्ठा । पुवगयंमि अ सुत्ते, एए ४ सद्दा पउट्टंति ॥ ५६० ॥

आसाढबहुलपक्खे १, भद्दवए २ कत्तिए य ३ पोसे य ४। फग्गुण ५ वइसाहेसु य ६, नायवा ओमरत्ताउ ॥ ५६१ ॥

[श्रीउत्तराध्ययने २६ अध्ययने १५ गाथा ॥]

निस्सग्गु १ वएसरुई २, आणारुइ ३ सुत्त ४ बीयरुइमेव ५ । अभिगम ६ वित्थाररुई ७, किरिआ ८ संखेव ९ धम्मरुई १० ॥ ६६२ ॥

[श्रीउत्तराध्ययने २८ अध्ययने १६-१७ गाथा ५६३ पत्रे ॥]

नत्थि चरित्तं सम्मत्तविहूणं दंसणे उ भइअवं । सम्मत्तचरित्ताइं जुगवं पुवं व सम्मत्तं ॥ ५६३ ॥

नादंसणिस्स नाणं, नाणेण विणा न होइ चरणगुणा । अगुणिस्स नत्थि मोक्खो, नत्थि अमोक्खस्स निवाणं ॥ ५६४ ॥

[श्रीउत्तराध्ययने २८ अध्ययने २९-३० गाथा ५६६ पत्रे ॥]

अवरण्हे सिद्धिगया, संभव १ पउमाभ २ सुविहि ३ वसुपुज्जा ४ । सेसा-उसभाईआ ८ सेयंसंता य पुवण्हे ॥ ५६५ ॥ धम्म १ अर २ नमी ३ वीरा ४, अवरत्ते पुवरत्तए सेसा ॥

[इति सिद्धप्राभृते ॥]

तेवीसईसूअगडे, रूवाहिएसु सुरेसु अ । जे भिक्खू जयई निच्चं, से न अच्छइ मंडले ॥ ५६६ ॥

[श्रीउत्तराध्ययने ३१ अध्ययने १६ गाथा ६१२ पत्रे ॥]

एतल्लघुवृत्तौ यथा-

भवण १ वण २ जोइ ३ वेमाणिआ य दस अट्ठ पंच एगविहा । इइ चउवीसं देवा, केई पुण बिंति अरिहंता ॥ ५६७ ॥ पुढवि १ दग २ अगणि ३ मारुअ ४, वणस्सइ ५ बि ६ ति ७ चउ- पणिंदिअ ९ अजीवा १० । पेहो ११ पेह १२ पमज्जण १३, परिठवण १४ मणो १५ वई १६ काए १७ ॥ ५६८ ॥

[श्रीउत्तराध्ययने ३१ गाथा लघुवृत्तौ १७ असंयमभेदाः ॥]

चउदारतिसोवाणं, मज्झे मणिपीढयं जिणतणुच्चं । दो धणुसयपिहु दीहं, सड्ढदुकोसेहि धरणिअला ॥ ५६९ ॥

[श्रीउपदेशसप्ततिग्रन्थे २३ उपदेशे ॥]

वत्सदेशेऽस्ति कौशाम्ब्यां, शतानीकसहोदरी । कर्मतो बालविधवा, जयन्ती परमार्हती ॥ ५७० ॥

[श्रीउत्तराध्ययने कमलसंयमीवृत्तौ ॥]

"Aho Shrut Gyanam"

भारण्डपक्षिणः ख्यातास्त्रिपदा मर्त्यभाषिणः । द्विजीवा द्विमुखा एकोदरा भिन्नफलैषिणः ॥ ५७१ ॥
[प्रतिक्रमणवृत्तौ तपाकृतायाम् ॥]

बायरपुढवी १ जल २ जलण ३ पवण ४ पत्तेअवण ५ निगोएसु ६ । सत्तरिकोडाकोडी, अयराणं नाह ! भमिओहं ॥ ५७२ ॥

[कायस्थितिसूत्रे ९ गाथा ॥]

पुढवी १ आउ २ वणस्सई ३, गब्भयपज्जत्तसंखजीवेसु ५ । सग्गचुआणं वासो, सेसा पडिसेहिआ ठाणा ॥ ५७३ ॥ मद्य १ मांसाशनं २ रात्रिभोजनं ३ कन्दभक्षणम् ४ । ये कुर्वन्ति वृथा तेषां, तीर्थयात्रा १ जप २ स्तपः ३ ॥ ५७४ ॥ वृथा चैकादशी प्रोक्ता ४, वृथा जागरणं हरेः ५ । वृथा च पौष्करी यात्रा ६, वृथा चान्द्रायणं तपः ७ ॥ ५७५ ॥ यस्मिन् गेहे सदाऽत्यर्थं, मूलकः पच्यते जनैः । श्मशानतुल्यं तद्वेश्म, पितृभिः परिवर्जितम् ॥ ५७६ ॥ मूलकेन समं चान्नं, यस्तु भुङ्क्तेनरोऽधमः । तस्य शुद्धिर्न विद्येत, चान्द्रायणशतैरपि ॥ ५७७ ॥ मूलकं भक्षयित्वा यः, कुरुते विष्णुपूजनम् । व्यर्थं तद्वैष्णवं पुण्यं, कृतं वर्षशतेन च ॥ ५७८ ॥
[इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मूलकपरिहारः ॥]

यस्तु वृन्ताक १ कालिङ्ग २ मूलका ३ ऽलाबु ४ भक्षकः । अन्तकाले स मूढात्मा, न स्मरिष्यति मां प्रति ॥ ५७९ ॥ भुक्तं हालाहलं तेन, कृतं वाऽभक्ष्यभक्षणम् । येन क्रव्यादनं देवि !, कृतं मूलकभक्षणम् ॥ ५८० ॥ नीलीं च वापयेद्यस्तु, मूलकं यस्तु भक्षयेत् । वृन्ताकभक्षणादेव, नरो यात्येव रौरवम् ॥ ५८१ ॥ पलाण्डु १ गृञ्जनं २ चैव, रसोनं ३ सूरणं ४ तथा । मत्स्यं मांसं च नाश्नीयात्, मूलकं तु विशेषतः ॥ ५८२ ॥

[मानवीस्मृतौ वृन्ताकादीनां परिहारः ॥]

मृते स्वजनमात्रेऽपि, सूतकं जायते किल । अस्तंगते दिवानाथे, भोजनं क्रियते कथम् ॥ ५८३ ॥ उदकमपि न पातव्यं, रात्रावत्र युधिष्ठिर ! । तपस्विना विशेषेण, गृहिणा तु विवेकिना ॥ ५८४ ॥
[पद्मपुराणे ॥]

रात्रौ ये सर्वदाऽऽहारं, वर्जयन्ति सुमेधसः । पक्षोपवासस्य फलं, ध्रुवं मासेन जायते ॥ ५८५ ॥ चतुर्मासे तु संप्राप्ते, रात्रिभोज्यं करोति यः । तस्य शुद्धिर्न विद्येत, चान्द्रायणशतैरपि ॥५८६॥ स्नानाद्यं वर्ज्यते यत्र, तथा वह्नेश्च तर्पणम् । देवपूजा तपो दानं, भुज्यते तत्र किं निशि ॥ ५८७ ॥
[इति महाभारते रात्रिभोजनपरिहारः ॥]

सप्तग्रामेषु यत्पापं अग्निना भस्मसात्कृते । तस्य तद्भवति पापं, मधुबिन्दुप्रभक्षणे ॥ ५८८ ॥ यो ददाति मधु श्राद्धो, मोहितो धर्मलिप्सया । स याति नरकं घोरं, खादकैः सह लम्पटैः ॥ ५८९ ॥ मेदमूत्रपुरीषाद्यै, रसाद्यैर्वर्जितं मधु । छर्दिलालामुखस्रावै,-रभक्ष्यं ब्राह्मणैर्मधु ॥ ५९० ॥
[इति महाभारते मधुभक्षणपरिहारः ॥]

नवसमएहिं जहन्नं तु, मुहुत्तं एगएगवुड्डीए । एगसमएण ऊणं, उक्किट्ठं जाव दोघडिअं ॥ ५९१ ॥
[विचारसत्तरीग्रन्थस्यावचूर्णौ श्रीमहेन्द्रसूरिविरचितायाम् ॥]

रत्तो १ दुट्ठो २ मूढो ३, पुव्विं वुग्गाहिओ अ चत्तारि । एए धम्मा अणरिहा, अरिहो पुण होइ मज्झत्थो ॥ ५९२ ॥

[तपारत्नशेखरसूरिकृतश्राद्धविधिप्रकरणे ॥]

[ददस्वान्नं नराधिप—। आशु प्रीतिकरं लोके किं दत्तेनापरेण ते ॥] अन्नं वै प्राणिनां प्राणाः, अन्नभोजः सुखौषधे । तस्मादन्नसमं दानं, न भूतं न भविष्यति ॥ ५९३ ॥ मिथ्यादृष्टिसहस्रेषु, वरमेको ह्यणुव्रती ।

"Aho Shrut Gyanam"

अणुव्रतिसहस्रेषु, वरमेको महाव्रती ॥ ५९४ ॥ महाव्रतिसहस्रेषु, वरमेको हि तात्त्विकः । तात्त्विकेन समं पात्रं, न भूतं न भविष्यति ॥ ५९५ ॥ शत्रुञ्जये कोटिगुणं, स्वभावात्स्पर्शतो मतम् । मनोवचनकायानां, शुद्ध्याऽनन्तगुणं भवेत् ॥ ५९६ ॥ एकैकस्मिन् पदे दत्ते, शत्रुञ्जयगिरिं प्रति । भवकोटिसहस्रेभ्यः, पातकेभ्यः प्रमुच्यते ॥ ५९७ ॥ ऋषिहत्यादिभिः पापै-र्भवकोटिकृतैरपि । मुच्यते दर्शनादस्य, स्पर्शनात्तु किमुच्यते ? ॥ ५९८ ॥ कृत्वा पापसहस्राणि, हत्वा जन्तुशतान्यपि । इदं तीर्थं समासाद्य, तिर्यञ्चोऽपि दिवं गताः ॥ ५९९ ॥ पल्योपमसहस्रं तु, ध्यानाल्लक्षमभिग्रहात् । दुष्कर्म क्षीयते मार्गे, सागरोपमसंमितम् ॥ ६०० ॥ शत्रुञ्जये जिने दृष्टे, दुर्गतिद्वितयं क्षिपेत् । सागराणां सहस्रं तु, पूजास्नात्रविधानतः ॥ ६०१ ॥ तंबोल १ पाण २ भोअण ३–वाणह ४ थीभोग ५ सुअण ६ निट्ठवणं ७ । मुत्तु ८ चारं ९ जूअं १०, वज्जे जिणमंदिरस्सन्ते ॥ ६०२ ॥ समणी १ मवगयवेअं २, परिहारि ३ पुलाय ४ मप्पमत्तं ५ च । चउदसपुव्विं ६ आहारगं ७ च न य कोइ संहरइ ॥ ६०३ ॥ चुल्लग १ पासग २ धन्ने ३, जूए ४ रयणे अ ५ सुमिण ६ चक्के अ ७ । चम्म ८ जुगे ९ परमाणू १०, दस दिट्ठंता मणुअलंभे ॥ ६०४ ॥ सुचेताः केतकीनेता, विनेता क्रूरकर्म्मणाम् । सप्तग्रामसहस्रेश,-श्चतुर्धा राज्यमातनोत् ॥ ६०५ ॥ १ ॥ कोशायैकं १ बलायैक २ मेकमन्तःपुराय ३ सः । दयादानाय ४ राज्यस्य, भागं चैकमकल्पयत् ॥ ६०५ ॥ २ ॥

इति प्रदेशिराजाधिकारे ।

भद्दो सवायलक्खं १, तयद्धमुल्लं लहेइ मंदकरी २ । तस्सद्धं मिगहत्थी ३, तयद्धमवि मिस्सजाइगओ ४ ॥ ६०६ ॥

सङ्घाचारटीकायामिदम् ।

जित्वा वर्षशतेनाऽथ, षट्खण्डामपि मेदिनीम् । क्रियमाणोत्सवः पौरै-र्ब्रह्मदत्तोऽविशत्पुरे ॥६०७॥

इत्युपदेशचिन्तामणौ ।

अतिवृष्टि १ रनावृष्टि २,–र्मूषकाः ३ शलभाः ४ शुकाः ५ । स्वचक्रं ६ परचक्रं च ७, सप्तैता ईतयः स्मृताः ॥ ६०८ ॥ गणिमं जाईफलपुप्फ–फलाइं १ धरिमं तु कुंकुमगुडाइ २ । मेज्जं चोप्पडलोणाई ३, वत्थरयणाई परिच्छेज्जं ॥ ६०९ ॥

इति बृहत्कल्पे ।

अवत्तमक्खरं पुण, पंचण्हवि थीणगिद्धिसहिएणं । नाणावरणुदएणं, बेंदियमाईकमवि सोही ॥ ६१० ॥ तं चिअ विसुज्झमाणं, बेंदियअमाई कमेण विण्णेअं । जा होंतऽणुत्तरसुरा, सव्वविसुद्धं तु पुव्वधरा ॥ ६११ ॥ संवच्छरेण भिक्खा, लद्धा उसभेण लोगनाहेण । सेसेहिं बीअदिवसे, लद्धाओ पढमभिक्खाओ ॥ ६१२ ॥ मग्गे १ अविप्पणासो २, आयारे ३ विणयया ४ सहायत्तं ५ । पंचविहँ नमुक्कारं, करेमि एएहिं हेऊहिं ॥ ६१३ ॥ मिच्छेव १ सासणे वा २, अविरयसम्मंमि ३ अहिगए वावि । जंति जिआ परलोए, सेसिक्कारस गुणे मोत्तुं ॥ ६१४ ॥ छावलियं सासाणं, समहिअतित्तीससागरचउत्था । देसूणा पुव्वकोडी, पंचमगं तेरसंमि पुणो ॥ ६१५ ॥ लहुपंचक्खरचरिमं, तइअं छट्ठा व बारसं जाव । इअ अट्ठ गुणट्ठाणा, अंतमुहुत्ता य पत्तेयं ॥ ६१६ ॥ आवस्सगस्स १ दसका–लिअस्स २ तह उत्तरज्झ ३ मायारो ४ । सूअगडे ५ निज्जुत्तिं, वुच्छामि तहा दसाणं ६ च ॥ ६१७ ॥ कप्पस्स ७ य निज्जुत्तिं, ववहारस्सेव ८ परमनिउणस्स । सूरिअपन्नत्तीए ९, वुच्छं इसिभासिआणं १० च ॥ ६१८ ॥

"Aho Shrut Gyanam"

श्रीभद्रबाहुस्वामिकृता दशनिर्युक्तयस्तत्प्रतिपादकमिदं गाथाद्वयं ज्ञेयम्।

वीरु १ सहाण २ पमाओ, अंतमुहुत्तं १ तहेव अहोरत्तं २। उवसग्गा पासस्स य १ वीरस्स २ य न उण सेसाणं॥ ६१९॥

इति प्रमादकाल उपसर्गाश्च।

आरिअमणारिएसुं, पढमस्स य १ नेमि २ पास ३ चरिमाणं ४। सेसाण २० आरिएसुं, छउमत्थत्ते विहारो अ॥ ६२०॥

इति विहारभूमिः।

सुमइस्स निच्चभत्तं १, मल्ली २ पासाण २ अट्ठमो आसी। वसुपुज्जस्स चउत्थं, वयंमि सेसाण छट्ठतवो॥ ६२१॥

इति २४ जिनव्रततपः।

वसुपुज्जो छसयजुओ १, मल्ली २ पासो ३ नरतिसयसहिआ। चउसहस्सजुओ उसहो ४, इग वीरो ५ सेस १९ सहस्सजुआ॥ ६२२॥

इति २४ जिनव्रतपरिवारः।

सुमई १ सिअंस २ मल्ली ३,-नेमी ४ पासाण ५ दिक्ख पुव्वण्हे। सेसाण १९ पच्छिमण्हे, जायं च चउत्थमणनाणं॥ ६२३॥

इति २४ जिनानां व्रतज्ञानं च।

सक्को अ लक्खमोलं, सुरदूसं ठवइ सव्वजिणखंधे। वीरस्स वरिसमहिअं, सया वि सेसाण तस्स ठिई॥ ६२४॥

इति २४ जिनदेवदूष्यं तस्य कालश्च।

अट्ठमभत्तंमि कए, नाणुसह १ मल्लि २ नेमि ३ पासाणं ४। वसुपुज्जस्स चउत्थे ५, सेसाणं १९ छट्ठभत्ततवे॥ ६२५॥

इति २४ जिनज्ञानतपः।

उसहस्स दससहस्सा १, विमलस्स य छच्च २ सत्त अणंतस्स ३। संतिस्स नवसयाइं ४, मल्लि ५ सुपासाण ६ पंचसया॥ ६२६॥ पउमस्स तिसयअडहिय ७, नेमिजिणंदस्स पणसयछत्तीसा ८। धम्मस्स अडहिअसयं ९, छसयाइं वासुपुज्जस्स १०॥ ६२७॥ पासस्स तित्तीसु मुणि ११, वीरस्स य नत्थि १ सहससेसाणं १२। अडतीससहसचउरसय, पणसीई सव्वपरिवारे॥ ६२८॥

इति २४ जिनमोक्षपरिवारः।

देसिअ १ राइअ २ पक्खिअ ३, चउमासिअ ४ संवच्छरीअ ५ नामाओ। दुण्हं पण पडिकमणा, मज्झिमगाणं २२ तु दो पढमा॥ ६२९॥ साहूण सिद्धिगमणं, असंख १ अड २ चउ ३ ति ४ संख ५ पुरिसा जा। संजायमुसह १ नेमी २ पासं ३ अंतिम ४ सेस ५ मुक्खाओ॥ ६३०॥

इति २४ जिनानां युगान्तकरभूमिः।

तेसिं चिअ नाणाओ, मुणीण गयकम्मयाण सिद्धिगओ। अंतमुहुत्ते दु २ ति ३ चउ ४, वरिसेसुं इगदिणाईसु॥ ६३१॥

इति २४ जिनानां पर्यायान्तकरभूमिः।

सड्ढदुवालसकोडी, सुवण्णवुट्ठी अ होइ उक्कोसा। लक्खा सड्ढदुवालस, जहण्णिआ होइ वसुहारा॥ ६३२॥

इति वसुधाराप्रमाणम्।

"Aho Shrut Gyanam"

जइ कहवि अ असमत्थो, होइ सरीरस्स दिव्वजोगेणं । तो उत्तरकालंपि हु, पूरिज्जा असढभावो उ ॥ ६२३ ॥

इति ज्ञानपञ्चम्यधिकारे ।

आरुहणे ओरुहणे, णिसिअण गोणाइणं च गाउम्हा । भुम्माहारच्छेदे, उवक्कमेणंच परिणामो ॥६३४॥ पडिकमओ गिहिणो वि हु, सगवेला पंचवेल इअरस्स । पूजासु तिसंझासु अ, होइ तिवेला जहन्नेणं ॥ ६३५ ॥ बत्तीसं किर कवला आहारो कुच्छिपूरओ भणिओ । पुरिसस्स महिलियाए, अट्ठावीसं भवे कवला ॥ ६३६ ॥ कवलाण य परिमाणं, कुकुडअंडगपमाणमेत्तं तु । जो वा अविगिअवयणो, वयणम्मि छुहेज्ज वीसत्थो ॥ ६३७ ॥ सुत्तत्थविऊ लक्खण–जुत्तो गच्छस्स मेढिभूओ अ । गणतत्तिविप्पमुक्को, अत्थं वायेइ आयरिओ ॥ ६३८ ॥ सम्मत्तनाणदंसण–जुत्तो सुत्तत्थतदुभयविहिन्नू । आयरिअट्ठाणजोगो, सुत्तं वाए उवज्झाओ ॥ ६३९ ॥

[संबोधप्रकरणे गा० १८६–२५ पत्रे ॥]

तवसंजमजोगेसुं, जो जोग्गो तत्थ तं पयट्टेइ । असहुं च निवत्तेई, गणतत्तिल्लो पवित्तीओ ॥६४०॥

[संबोधप्रकरणे गा० १९१–२५ पत्रे ॥]

थिरकरणा पुण थेरो, पवित्ति व वारिएसु अत्थेसु । जो जत्थ सीअई जई, संतबलो तं थिरं कुणइ ॥ ६४१ ॥

[संबोधप्रकरणे गा० १८९–२५ पत्रे]

पियधम्मो दढधम्मो, संविग्गो उज्जुओ अ तेअंसी । संगहकुसलो सुत्तत्थविऊ गणाहिवई ॥६४२॥ उद्धावणा पहावण,-खेत्तोवहि, मग्गणासु अविसाई । सुत्तत्थतदुभयविऊ, गणवच्छो एरिसो होई ॥६४३॥

[संबोधप्रकरणे गा० १९४–२६ पत्रे ॥]

सत्तविआरण पावंअणंतगुणिअं च एक्कभूअस्स । भूअस्स असंखगुणं, पावं इक्कस्स पाणस्स ॥ ६४४ ॥ बेंदिअ तेंदिअ चउरिंदी तह य चेव पंचिंदी । लक्खसहस्स तह सय–गुणं च पावं मुणेयव्वं ॥ ६४५ ॥ ओरालिअं च दिव्वं, मणवयकाएण करणजोगेणं । अणुमोअणकारावण–करणेणट्ठारसा बंभं ॥ ६४६ ॥ दो घयपला महुपलं, दहिअस्सद्धाढयं मिरिअवीसं । दसखंडगुलपलाइं, एसो रसालू निवइजोगो ॥ ६४७ ॥ अज्ञाण साविआण य, अकालचारित्तदोसभावाओ । ओसरणंमि न गमणं, दिवसतिजामे निसि कहंता ॥ ६४८ ॥ विंटट्ठाईं सुरहिं जलथलयदिव्वकुसुमनीहारिं । पयरंति समंतेणं, दसद्धवन्नं कुसुमवासं ॥ ६४९ ॥

संघाचारवृत्तौ आगमगाथेयमिति प्रोक्तमस्ति [९९ पत्रे] ।

चिइवंदणा तिभेआ, जहन्निआ १ मज्झिमा य २ उक्कोसा ३ । इक्किक्कावि तिभेआ, जहन्नमज्झिमिअउक्कोसा ॥ ६५० ॥ एगनमुक्कारेणं, चिइवंदणया जहन्नयजहन्ना । बहु नमुक्कारेहिं अ, नेआ उ जहण्णमज्झिमिआ ॥ ६५१ ॥ सच्चिअ सक्कथयंता, जहण्णउक्कोसिआ मुणेअव्वा ३ । नमुक्काराइ चिय

१–'आरुहणे०' शकटे गवादिपृष्ठेषु च लवणादीनां यद्वयो भूय आरोहणमवरोहणं च, तथा यत्तस्मिन् शकटादौ लवणादिभारोपरि मनुष्या निषीदन्ति तेषां गवादीनां च यः कोऽपि पृष्ठादिगात्रोष्मा तेन वा परिणामो भवति, तथा यो यस्य भौमादिकः पृथिव्यादिक आहारस्तस्यावच्छेदे तस्य परिणामः उपक्रमः शस्त्रम्, उपक्रम्यन्ते जीवानामायूंषि अनेनेति व्युत्पत्तेः, तच्च शस्त्रं त्रिधा–स्वकायशस्त्रं १ परकायशस्त्रं २ तदुभयशस्त्रं ३ चेति । तत्र स्वकायशस्त्रं यथा लवणोदकं मधुरोदकस्य, कृष्णभूमं वा पाण्डुभूमस्येति १, परकायशस्त्रम्–अग्निरुदकस्य, उदकं वा अग्नेरिति २, तदुभयशस्त्रं–यथोदकमृत्तिका शुद्धोदकस्येति, एवमादीनि सचित्तवस्तूनां परिणमने कारणानि मन्तव्यानि ॥

"Aho Shrut Gyanam"

दंडग–इगथुई मज्झिमजहण्णा ४ ॥ ६५२ ॥ मंगल सक्कत्थय चिअदंडकथुईहि मज्झिममज्झिमिया ५। मज्झिमउक्कोसा पुणे, सच्चिअसिलोगतिन्निथुईहिं ॥ ६५३ ॥ उक्कोसजहण्णा पुण, सच्चिअसक्कत्थयाइ संजुत्ता । जा थुइजुअलदुगेणं, दुगुणिअ चिइदंडयाइ पुणो ॥ ६५४ ॥ उक्कोसमज्झिमा सा ८, उक्कोसुकोसिआ य पुण नेआ । पणिवायपणगपणिहाण–तिअगथुत्ताइसंपुण्णा ९ ॥ ६५५ ॥ एसा नवप्पयारा, आइण्णा वंदणा जिणमयंमि । कालोचिअकारीणं, अणग्गाहाणं सुहा सव्वा ॥ ६५६ ॥ उक्कोसा तिविहा वि हु, कायव्वा सत्तिओ उभयकालं। सेसा पुण छब्भेआ, चेइअपरिवाडिमाईसु ॥६५७॥

एता अष्टौ गाथा वृहद्भाष्यस्य संघाचारवृत्तौ [१७६ पत्रे] उक्तरूपतया लिखिताः सन्ति ।

मइनाणं १ सुअनाणं २, ओही ३ मणनाण ४ केवलन्नाणं ५ । पढमदुनाण परोक्खा, नाणतिगं जीवपच्चक्खं ॥ ६५८ ॥ सामण्णेण छ दव्वा, मइसुअनाणी अ दो वि जाणंति । ओहीनाणी पुग्गल–दव्वं जाणेइ नो अन्नं ॥६५९॥ मणपज्जवनाणी पुण, मणचिंतिअपज्जवे वि आणेइ । केवलनाणि छदव्वा, जाणइ पासइ सपज्जाया ॥ ६६० ॥ उग्गह १ ईह २ अवाओ ३, अ धारणा ४ एव हुंति चत्तारि । मइनाणे एआइं, भेआ वत्थू समासेणं ॥६६१॥ उग्गह इक्कं समयं ईहावाओ ३ महुत्तमेगं (मद्धं–मन्तं इति पाठान्तरम्) तु । कालमसंखं संखं, च धारणा होइ नायव्वा ॥६६२॥ पंचहि वि इंदिएहिं, मणसा अत्थुग्गहो मुणेअव्वो । चक्खिंदिअमणरहिअं, वंजणमीहाइअं छद्धा ॥६६३॥ उप्पत्तिआ १ वेणयिआ २, कम्मइआ ३ पारिणामिआ ४ । बुद्धी चउव्विहा वुत्ता, पंचमा नोवलब्भई ॥६६४॥ मइनाणस्स य भेआ, उग्गहमाई चउव्विहं तं तु । इंदिअनोइंदिपुढो, नवरं वंजणचउब्भेअं ॥ ६६५ ॥ छ चउक्का चउवीसं, वंजणचउक्केण अट्ठवीसं तु । सुअनिस्सिअं तु एअं, बुद्धिचउक्केण बत्तीसं ॥ ६६६ ॥ बहुविह खिप्प अणिसिअं, संदिद्धधुवाण सेअराणं च । बारसगुणट्ठवीसा, चउबुद्धिजुआ तिसयचाला ॥६६७॥

[एवं मइनाणं सम्मत्तं ॥ १ ॥]

अक्खर १ सण्णी २ सम्मं ३, साईअं ४ खलु सपज्जवसिअं ५ च । गमिअं ६ अंगपविट्ठं ७, सत्तवि एए सपडिवक्खा ॥ ६६८ ॥ अक्खरसुअमिह तिविहं, घडसरिसो सण्णिअक्खरो होई । वंजणभासासद्दो, लद्धक्खरमत्थपडिबोहो ॥ ६६९ ॥ ऊससिअं नीससिअं, निच्छूढं खासिअं च छीयं च । निस्सिंघियमणुसारं, अणक्खरं छेलिआईअं ॥ ६७० ॥ सण्णा मणविन्नाणं, जेसिं सा अत्थि ते उ सण्णित्ति । मणविण्णाणविमुक्का, असण्णिणो मंडुकाईआ ॥ ६७१ ॥ हेऊवाउवएसा, जह कीडिअ दीहकालउवएसा । तक्कालकरणचिंता, सम्मजुए दिट्ठिवाया य ॥ ६७२ ॥ मिच्छा सम्मे पत्ते, साइ सुअं होइ सम्मदिट्ठिस्स । अभविअजीवे अ पुणो, अणाइअं सुअं अनाणं तु ॥ ६७३ ॥ पज्जवसाणेण जुअं, केवलिनाणस्स होइ सुअनाणं । सुअमण्णाणमभव्वे, अपज्जवसिअं मुणेअव्वं ॥ ६७४ ॥ अंगपविट्ठं गमिअं, सुगमं पडिवक्खसंजुअं सम्मं । इअ चउदसभेअजुअं, सुअनाणं विवरीअं नेअं ॥ ६७५ ॥

[॥ एवं सुअनाणं सम्मत्तं ॥ २ ॥]

अणुगामि अणणुगामी, अवट्ठिअमणवट्ठिअं च विन्नेअं । तह हीअमाणयं वड्ढमाणयं ओहि चउ-भेअं ॥ ६७६ ॥ तप्पागारे पल्लग–पडहझल्लरिमुअंगपुप्फज्झये । तिरिअमणुएसु ओही, नाणाविह-संठिओ भणिओ ॥ ६७७ ॥

नेरइअ भवण वणयर–जोइसकप्पालयाणमोहिस्स। गेविज्जऽणुत्तराण य, हुंतागारा जहासंखं ॥६७८॥ अहवा बहुप्पयारं, असंखलोअप्पएसपरिमाणं । लोगगयरूविदव्वा–णं तत्ताओ अणंतविहे ॥ ६७९ ॥

[॥ एवं ओहीनाणं सम्मत्तं ॥ ३ ॥]

"Aho Shrut Gyanam"

रिउमइविउलमईहिं अ, मणपज्जवनाणवन्नणं समए। अड्ढाइअंगुलूणं, पढमं बीअं तु नरखेत्तं ॥६८०॥

[॥ एवं मणपज्जवनाणं सम्मत्तं ॥ ४ ॥]

केवल १ मिग २ मसहायं ३, असाँहारण ४ मणंत ५ मपरिसेसं ६ च। केवलसद्दस्स इमे, अत्था छच्चेव नायव्वा ॥ ६८१ ॥ आइतिनाणं तुरिआ, मणनाणं छट्ठया उ खीणंतं। केवलमंतदुगंमी, मिस्से मिस्सं तु आइतिगं ॥ ६८२ ॥ पंचण्हं नाणाणं, वक्खाणमिणं समासओ भणिअं। छव्वीसागाहाहिं, रइअं हरिभद्दसूरीहिं ॥ ६८३ ॥

[॥ इति ज्ञानपञ्चकविवरणप्रकरणं श्रीहरिभद्रसूरिकृतम् ॥]

संसारहेतुभूतायाः, यः क्षयः कर्मसन्ततेः। निर्जरा सा पुनर्द्वेधा, सकामाकामभेदतः ॥ ६८४ ॥ श्रमणेषु सकामा स्यादकामा शेषजन्तुषु। पाकः स्वत उपायाच्च, कर्मणां स्याद् यथाऽऽम्रवत् ॥ ६८५ ॥ कर्मणां नः क्षयो भूयादित्याशयवतां सताम्। वितन्वतां तपस्यादि, सकामा शमिनां मता ॥ ६८६ ॥ एकेन्द्रियादिजन्तूनां, सज्ज्ञानरहितात्मनाम्। शीतोष्णवृष्टिदहनच्छेदभेदादिभिः सदा ॥ ६८७ ॥ कष्टं वेदयमानानां, यः शाटः कर्मणां भवेत्। अकामनिर्जरामेना–मामनन्ति मनीषिणः ॥ ६८८ ॥ तपःप्रभृतिभिर्वृद्धिं, व्रजन्ति निर्जरा यतः। ममत्वं कर्म संसारं, हन्यात्तां भावयेत्ततः ॥ ६८९ ॥

इदं गाथाषट्कं श्रीप्रवचनसारोद्धारे ६८ कारणद्वारे (पत्र १५९) तत्रापि तृतीये भावनाख्ये अवान्तरद्वारे, वृत्तौ तु एवं तथाहि–'अथ निर्जरा भावना' इति।

पासत्थाइविबोहिअ केइ जिया वयइ कारावइं जिणमंदिरु तम्मयभाविअइ तं किर निस्साचेइओ अववाई ण भणिओ तिहिं पव्वतिहिहिं कीरइ वंदणु कारणिओ ॥ ६९० ॥ (३३ गाथा) ॥ धम्मिउ धम्मुकज्जु साहंतउ, परु मारइ कीरइ जुज्झंतउ। तु वि तसु धम्मु अत्थि न हु नासइ, परमपइ निवसइ सो सासइ ॥ ६९१ ॥ जइ किर फुल्लइ लब्भइ मुल्लिण तो वाडिअ न करहि सहु कूविण। थावर घरहट्टइ न करावहि, जिणधणु संगहु करि न वद्धारहि ॥ ६९२ ॥ जइ किर कु वि भरंतु घरहट्टइ, देइ त लिज्जहि लहणावट्टइं। अह कु वि भत्तिहि देइ त लिज्जहि, तब्भाडयधणि जिण पूइज्जइ ॥६९३॥ हास खिड्ड हुड्ड वि वज्जिज्जहिं, सहु पुरिसेहि वि केलि न किज्जहिं। रत्तिहिं जुवइपवेसु निवारहिं, न्हवणु नंदि न पइट्ठ करावहिं ॥ ६९४ ॥

[इदं वृत्तपञ्चकं (२६–२८–२९–३८) श्रीजिनदत्तसूरिकृतोपदेशरसायनग्रन्थस्य ४२ पत्रे। तस्य व्याख्या तु पृथग्लिखितविशेषनवमपत्रादवसेया ॥]

एत्तोच्चिअ पडिसेहो, दढं अजोगाण वन्निओ समए। एअस्स पाइणोऽविअ, बीअंति विहि एस ऽइसइणा ॥ ६९५ ॥

[इति श्रीहरिभद्रसूरिकृतपञ्चवस्तुके गा० ५२१–२६१ पत्रे। चारित्रभङ्गेऽपि चारित्रदानं लाभाय ॥]

पच्छन्नो भोत्तव्वं, जइणा दाणाओं पडिनिअत्तेणं। तुच्छगजाइअदाणे, बंधो इहरा पदोसाई ॥६९६॥

[पञ्चवस्तुके गा० ३९१, ६४ पत्रे ॥]

एएसि वयपमाणं, अट्ठ समाउत्ति वीअरागेहिं। भणिअं जहन्नयं खलु, उक्कोसं अणवगल्लोत्ति ॥ ६९७ ॥ तदहो परिभवखित्तं, न चरणभावोऽविपायमेएसिं। आहच्चभावकहगं, सुत्तं पुण होइ नायव्वं ॥ ६९८ ॥

"Aho Shrut Gyanam"

एष पूर्वपक्षः, उत्तरमाह—

भण्णइ खुड्डगभावो, कम्मखओवसमभावपभवेणं । चरणेण किं विरुज्झइ, जेणमजोगत्ति-सग्गाहो ॥ ६९९ ॥

एतदेव स्पष्टयति—

तक्कम्मखओवसमो, चित्तनिबंधणसमुब्भवो भणिओ । न उ वयनिबंधणो चिय, तम्हा एआणम-विरोहो ॥ ७०० ॥

इत्थं चैतदङ्गीकर्त्तव्यमिति दर्शयति—

गयजोव्वणावि पुरुसा, बालुव्व समायरंति कम्माणि । दोग्गइनिबंधणाइं, जोव्वणवंताऽवि ण य केवि ॥ ७०१ ॥

[इदं गाथापञ्चकमपि पञ्चवस्तुकसूत्रस्य गा० ५०, ५१, ५६–५९–१०–११ पत्रे ॥]

अत्राष्टवर्षेभ्योऽर्वागपि दानं प्रोक्तम्—

चउद्दसिं १ पण्णरसिं च २, वज्जेज्जा अट्ठमिं च ३ नवमिं ४ च । छट्ठिं च ५ चउत्थिं ६ बारसिं च सेसासु दिज्जाहि ॥ ७०२ ॥

एतासु तिथिषु दीक्षा न देया—

तिसु उत्तरासु तह रोहिणीसु कुज्जा उ सेहनिक्खमणं । गणिवायए अणुण्णा, महव्वयाणं च आरुहणा ॥ ७०३ ॥

एतेषु नक्षत्रेषु दीक्षादिदानं कार्यम् । वर्जनीयनक्षत्राण्याह—

संझागयं १ रविगयं २, विड्डेरं ३ सग्गहं ४ विलंबिं च ५ । राहुगयं ६ गहभिन्नं च ७, वज्जए सत्त नक्खत्ते ॥ ७०४ ॥

[पञ्चवस्तुके गा० ११९–१, २० पत्रे ॥]

एतानि सप्त नक्षत्राणि दीक्षायां वर्जनीयानि । एतेषामर्थो यथा—

अत्थमणे संझागयं १, रविगयं जहिं ठिओ उ आइच्चो २ । विड्डेरमवद्दारिअ ३, सग्गह कूरग्गहठिअं ४ तु ॥ ७०५ ॥ आइच्चपिट्ठओ जं, बिलंबि ५ राहुगयं तु जहिं गहणं ६ । मज्झेणं जस्स गहो, गच्छइ तं होइ गहभिन्नं ॥ ७०६ ॥

एतेषां फलं यथा—

संझागयंमि कलहो १, आइच्चगए अ होइ निव्वाणि २ । विड्डेरे परविजओ ३, सग्गहम्मि अ विग्गहो होइ ४ ॥ ७०७ ॥ दोसो अभंगयत्तं, होइ कुभत्तं विलंबिनक्खत्ते ५ । राहुगयंमि अ मरणं ६, गहभिन्ने सोणिउग्गालो ७ ॥ ७०८ ॥

[पञ्चवस्तुकटीका २० पत्रे ॥]
[इति दीक्षाविषये गाथाः ॥]

चिइवंदण रयहरणं, अट्ठा सामाइयस्स उस्सग्गो । सामाइतिगकड्डण, पयाहिणं चेव तिक्खुत्तो ॥ ७०९ ॥ गुरवो वामगपासे, सेहं ठाविसु अह वए दिंति । इक्किक्कं तिक्खुत्तो, इमेण ताणमुववउत्ता ॥ ७१० ॥

[इदं गाथाद्वयं पञ्चवस्तुके (२२ पत्रे) वारत्रयं सामायिकोच्चारप्रतिपादकम् ॥]

सचित्त १ दव्व २ विगई ३, वाणहि ४ तंबोल ५ वत्थ ६ कुसुमेसु ७ । वाहण ८ सयण ९ विलेवण १०, बंभ ११ दिसि १२ न्हाण १३ भत्तेसु १४ ॥ ७११ ॥

[एतस्या विवरणं विशेषशतके ८५ द्वारे ॥]

"Aho Shrut Gyanam"

चतुस्तिलैर्जवः प्रोक्त—श्चतुर्जवैश्च अङ्गुलम् । चतुर्भिरङ्गुलैर्मुष्टि—श्चतुर्मुष्टिमितः करः ॥ ७१२ ॥ चतुर्हस्तैश्च दण्डः स्यात्, क्रोशस्तैर्द्विसहस्रकैः । चतुर्भिः क्रोशकैश्चाथ, योजनं परिकीर्त्तितम् ॥ ७१३ ॥ शतयोजनो देशः स्याच्छतदेशं तु मण्डलम् । शतमण्डलः खण्डः स्यान्नवखण्डा वसुन्धरा ॥ ७१४ ॥

[इति गाथात्रयं गणिते ॥]

अन्तरङ्गारिषड्वर्ग,—परिहारपरायणः । कामक्रोधलोभमान,—मदहर्षौ अमी मताः ॥ ७१५ ॥ पुव्वभवे सो पेच्छइ, इक्कं दो तिन्नि जाव नवमं वा । उवरिं तस्स अविसओ, सभावओ जाइसरणस्स ॥ ७१६ ॥

[इन्द्राचार्यकृतयोगविधौ ॥]

चउदस वासाणि तया, जिणेण उप्पाडिअस्स नाणस्स । तो बहुरयाण दिट्ठी, सावत्थीए समुप्पन्ना ॥ ७१७ ॥ जेट्ठा सुदंसणजमालिऽणोज्ज सावत्थि तेंदुगुज्जाणे । पंचसया य सहस्सं, ढंकेण जमालि मोत्तूणं ॥ ७१८ ॥

[इति प्रथमो जमालिनिह्नवः ॥ १ ॥]

सोलस वासाणि तया, जिणेण उप्पाडियस्स नाणस्स । जीवपएसियदिट्ठी, उसभपुरंमी समुप्पन्ना ॥ ७१९ ॥ रायगिहे गुणसिलए, वसु चोद्दसपुव्वि तीसगुत्ताओ । आमलकप्पा णयरी, मित्तसिरी कूरपिंडाई ॥ ७२० ॥

[इति द्वितीयस्तिष्यगुप्तनिह्नवः ॥ २ ॥]

चोद्दा दो वाससया, तइया सिद्धिं गयस्स वीरस्स । अव्वत्तयाण दिट्ठी, सेयवियाए समुप्पन्ना ॥ ७२१ ॥ सेअवि पोलासाढे, जोगे तद्दिवसहिअयसूले अ । सोहम्मि नलिणिगुम्मे, रायगिहे मुरिअ बलभद्दे ॥ ७२२ ॥

[इति आषाढाचार्यशिष्यमण्डलस्तृतीयो निह्नवः ॥ ३ ॥]

वीसा दो वाससया, तइआ सिद्धिं गयस्स वीरस्स । सामुच्छेइअदिट्ठी; मिहिलपुरीए समुप्पन्ना ॥ ७२३ ॥ मिहिलाए लच्छिघरे, महगिरिकोडिण्ण आसमित्ते अ । नेउणियाणुप्पवाए, रायगिहे खंडरक्खा य ॥ ७२४ ॥

[इति अश्वमित्रश्चतुर्थो निह्नवः ॥ ४ ॥]

अट्ठावीसा दो वाससया, तइआ सिद्धिं गयस्स वीरस्स । दो किरिआणं दिट्ठी, उल्लुगतीरे समुप्पन्ना ॥ ७२५ ॥ णइखेडजणव उल्लुग, महगिरिधणगुत्त अज्जगंगे अ । किरिआ दो रायगिहे, महातवो तीरमणिणाए ॥ ७२६ ॥

[इति गाङ्गेयनिह्नवः पञ्चमः ॥ ५ ॥]

पंचसया चोआला, तइआ सिद्धिं गयस्स वीरस्स । पुरिमंतरंजिआए, तेरासियदिट्ठि उप्पन्ना ॥ ७२७ ॥ पुरिमंतरंजि भुयगुह, बलसिरि सिरिगुत्त रोहगुत्ते अ । परिवायपोट्टसाले, घोसणपरिसेहणा वाए ॥ ७२८ ॥

[इति रोहगुप्तनामा षष्ठो निह्नवः ॥ ६ ॥]

पंचसया चुलसीया, तइआ सिद्धिं गयस्स वीरस्स । [अबद्धि] अबद्धिआण दिट्ठी, दसपुरनयरे समुप्पन्ना ॥ ७२९ ॥ दसपुरे नगरुच्छुघरे, अज्जरक्खिअपूसमित्ततिअगं च । गोट्ठामाहिल नवमट्ठमे

"Aho Shrut Gyanam"

सु पुच्छा य विंझस्स ॥ ७३० ॥ पुट्ठो जहा अबद्धो, कंचुइणं कंचुओ समन्नेइ । एवं पुट्ठमबद्धं, जीवं कम्मं समन्नेह [इ] ॥ ७३१ ॥

[इति गोष्ठामाहिलः सप्तमो निह्नवः ॥ ७ ॥]

छवास सयाइं नवुत्तराहिं सिद्धिं गयस्स वीरस्स । तो बोडिआण दिट्ठी, रहवीरपुरे समुप्पन्ना ॥७३२॥

[इति दिगम्बरमतप्रवर्त्तकः सहस्रमल्लनामा सर्वविसंवादी अष्टमो निह्नवः ॥ ८ ॥ आ. चू. पृ. ४२७]

एताः षोडश गाथाः श्रीआवश्यकचूर्णितो लिखिताः सन्ति । आसां व्याख्या सम्बन्धसहिता मत्कृतविशेषसङ्ग्रहतो ज्ञेया ॥

हत्वा नृपं पतिमवेक्ष्य भुजङ्गदष्टं, देशान्तरे विधिवशाद्गणिकाऽस्मि जाता । पुत्रस्य संगमधिगम्य चितां प्रविष्टा, शोचामि गोपगृहिणी कथमद्य तक्रम् ॥ ७३३ ॥

आहाकम्मपरिणओ, फासुअभोईवि बंधओ होइ । सुद्धं गवेसमाणो, आहाकम्मेवि सो सुद्धो ॥ ७३४ ॥

[इति पिण्डनिर्युक्तौ २०७ गाथेयम् ७४ पत्रे ॥]

जह जह पएसिणी जाणुगंमि पालित्तओ भमाडेइ । तह तह सीसे वियणा, पणस्सइ मुरुंडरायस्स ॥ ७३५ ॥

[इति पिण्डनिर्युक्तौ ४९८ गाथासम्बन्धः श्रीमलयगिरिकृतवृत्तौ पृ० १४२]

भिक्खं पविट्ठेण मएऽज्ज दिट्ठं, पमयामुहं कमलविलासनेत्तं । वक्खित्तचित्तेण न सुट्ठु नायं, सकुंडलं वा वयणं नवत्ति ॥ ७३६ ॥ फलोदएणं मि गिहे पविट्ठो, तत्थासणत्था पमया मि दिट्ठा । वक्खित्तचित्तेण न सुट्ठु नायं, सकुंडलं वा वयणं नवत्ति ॥ ७३७ ॥ मालाविहारंमि मएऽज्ज दिट्ठा उवासिया कंचणभूसियंगी । वक्खित्तचित्तेण न सुट्ठु नायं, सकुंडलं वा वयणं नवत्ति ॥ ७३८ ॥ खंतस्स दंतस्स जिइंदियस्स, अज्झप्पओगे गयमाणसस्स । किं मज्झ एएण विचिंतिएणं, सकुंडलं वा वयणं नवत्ति ॥ ७३९ ॥ उल्लो सुक्को अ दो छूढा, गोलया मट्टिआमया । दोऽवि आवडिआ [कुड्डे] भित्ते, जो उल्लो तत्थ [सोऽत्थ] लग्गई ॥ ७४० ॥ एवं लग्गंति दुम्मेहा, जे नरा कामलालसा । विरत्ता उ न लग्गंति, जहा से सुक्कगोलए ॥ ७४१ ॥

[आचाराङ्गनिर्युक्तौ चतुर्थाध्ययने द्वितीयोद्देशकप्रान्ते १७० पत्रे गाथाषट्कम् ॥]

नेसप्पे १ पंडुयए २, पिंगलए ३ सव्वरयण ४ महपउमे ५ । काले अ ६ महाकाले ७, माणवग ८ महानिहीं संखे ९ ॥ ७४२ ॥

[इति नवनिधिनामानि ॥]

चक्कट्ठपइट्ठाणा, अट्ठुस्सेहा य नव य विक्खंभे । बारस दीहा मंजूससंठिआ जण्हवीए मुहे ॥ ७४३ ॥

[इति याभ्यः सकाशान्नव निधानानि निस्सरन्ति तासां मञ्जूषाणां मानम् ॥]

वेरुलिअमणिकवाडा, कणयमया विविहरयणसंपुण्णा । ससिसूर चक्कलक्खण अणुसमवयणो ववत्तीया ॥ ७४४ ॥

[इति मञ्जूषास्वरूपम् प्रवचने ५०६ ॥]

[अंतमुहुत्तं, जहन्निओ किट्ठिओ असंखिज्जं । सेवंति विसयसेवा, नायव्वा सव्वदेवाणं ॥ १ ॥ एवं देवाणु खलु, उज्जअ हाणी उ जइवि संभवइ । तइआओ रूवसंपय, असंखगुणयाओ देवाणं ॥ २ ॥ वक्खोए वेमाणिय, कंठे तह होइ जोइसाणं तु । मुद्दमा भवणयराणं, सीसट्ठाणेसु भुवणाई ॥ ३ ॥ सामन्ना य तायत्तीसा य, पारयियारक्खलोअपाला य । अणीयपइन्नभिओगा, किब्बिसियं

"Aho Shrut Gyanam"

दस भवण वेमाणी ॥ ४ ॥ संखेण भवणवासी, विंतरदेवा य पडहसद्देणं । उट्ठंति ससंभंता, जोइ-सिया सिंहनादेणं ॥ ५ ॥ कप्पाहि वावि चलिया, घंटानाएण बोहिया संता । सब्बड्डसमुदएणं, इंति इह माणुसं खित्तं ॥ ६ ॥

पुक्खलवइ–विजए, पुव्वविदेहंमि पुंडरगिरिए । कुंथु अरहंतरंमि य, जाओ सीमंधरो भयवं ॥ १ ॥ मुणिसुव्वयजिण नमिजिण अंतररज्जं च इत्त निक्खंतो । सिरिउदयदेव पेढालअंतरे पावई मुक्खं ॥ २ ॥

(इति सीमन्धरस्य जन्मनो मोक्षस्य च कालः)

आदौ मयैवाऽयमदीपि नूनं, तन्नो दहेन्मामवहीलितोऽपि । इति भ्रमादङ्गुलिपर्वणाऽपि, स्पृश्येत नो दीप इवाऽवनीपः ॥ ७४५ ॥ कम्मं १ मम्मं २ जम्मं ३, तिन्नि वि एयाइ मा भणि-ज्जासु । मम्माइसु विद्धो पुण, मारिज्ज सयं मरिज्जा वा ॥ ७४६ ॥ चक्खुजुअं चउरिंदिसु, तं चिअ बारस पणिंदि तसकाए । जोए वेए सुकाए भवसन्नीसु आहारे ॥ ७४७ ॥ सन्तोऽप्य-सन्तोऽपि परस्य दोषा, नोक्ताः श्रुता वा गुणमावहन्ति । वैराणि वक्तुः परिवर्द्धयन्ति, श्रोतुश्च तन्वन्ति परां कुबुद्धिम् ॥ ७४८ ॥ वाचको १ वञ्चको २ व्याधिः ३, पञ्चत्वं ४ मर्मभाषकः ५ । योगिनामप्यमी पञ्च, प्रायेणोद्वेगकारकाः ॥ ७४९ ॥ कएवि अन्नस्सुवयारजाए, कुणंति जे पच्चु-वयारजुम्मं । न तेण तुल्लो विमलोवि चंदो, न चेव भाणू नहि देवराया ॥ ७५० ॥ स्वामि-भक्तो १ महोत्साहः २, कृतज्ञो ३ धार्म्मिकः ४ शुचिः ५ । अकर्कशः ६ कुलीनश्च ७, शास्त्रज्ञः ८ सत्यभाषकः, ९ ॥ ७५१ ॥ विनीतः १० स्थूललक्षश्च ११ ऽव्यसनी १२ वृद्धसेवकः १३ । अक्षुद्रः १४ सत्त्वसंपन्नः १५, प्राज्ञः १६ शूरो १७ ऽचिरक्रियः १८ ॥ ७५२ ॥ पूर्वं परीक्षितः सर्वोपधासु १९ निजदेशजः २० । राजार्थ–स्वार्थ–लोकार्थ–कारको २१ निःस्पृहः २२ शमी २३ ॥ ७५३ ॥ अमोघवचनः २४ कल्पः २५, पालिताशेषदर्शनः २६ । पात्रौचित्येन सर्वत्र, नियोजितपदक्रमः २७ ॥ ७५४ ॥ आन्वीक्षिकीत्रयीवार्त्ता–दण्डनीतिकृतश्रमः २८ । क्रमागतो २९ वणिक्पुत्रो ३०, भवेन्मन्त्री न चापरः ॥ ७५५ ॥

इति श्रीकुमारपालचरित्रे उदयनमन्त्रिस्थापने ३० गुणाः ॥

विना गुरुभ्यो गुणनीरधिभ्यो, जानाति धर्म्मं न विचक्षणोऽपि । आकर्णदीर्घोज्ज्वललोचनोऽपि, दीपं विना पश्यति नाऽन्धकारे ॥ ७५६ ॥ नाऽहं स्वर्गफलोपभोगतृषितो, नाभ्यर्थितस्त्वं मया; सन्तुष्टस्तृणभक्षणेन सततं, साधो ! न युक्तं तव । स्वर्गे यान्ति यदि त्वया विनिहता, यज्ञे ध्रुवं प्राणिनो; यज्ञं किं न करोषि मातृपितृभिः, पुत्रैस्तथा बान्धवैः ॥ ७५७ ॥ कामराग १ स्नेहरागा २,–वीषत्करनिवारणौ । दृष्टिरागस्तु पापीयान्, दुरुच्छेदः सतामपि ॥ ७५८ ॥ नवीनजिनगेहस्य, विधाने यत्फलं भवेत् । तस्मादष्टगुणं पुण्यं, जीर्णोद्धारेण जायते ॥ ७५९ ॥ सन्मृत्तिका १ ऽमल-शिलातल २ रूप्य ३ दारु ४, सौवर्ण ५ रत्न ६ मणि ७ चन्दन ८ चारुबिम्बम् । कुर्वन्ति जैनमिह ये स्वधनानुरूपं, ते प्राप्नुवन्ति नृसुरेषु महासुखानि ॥ ७६० ॥ पृथ्वीनाथसुता भुजक्षचरिता जंजी-रिता मुण्डिता, क्षुत्क्षामा रुदती विधाय पदयोरन्तर्गतां देहलीम् । कुल्माषान् प्रहरद्वयव्यपगमे शूर्पस्य कोणे स्थितान्, दद्यात्पारणकं तदा भगवतः सोऽयं महाभिग्रहः ॥ ७६१ ॥ सम्यक्त्वधारी १ पथि पादचारी २, सचित्तवारी ३ वरशीलधारी ४ । भूस्वापकारी ५ सुकृती सदैकाऽऽहारी ६ विशुद्धां विदधाति यात्राम् ॥ ७६२ ॥ दशशूनासमं चक्री, दशचक्रिसमो ध्वजः । दशध्वजसमा वेश्या, दशवेश्यासमो नृपः ॥ ७६३ ॥ वेश्या रागवती सदा तदनुगा षड्भी रसैर्भोजनं, शुभ्रं

"Aho Shrut Gyanam"

धाम मनोहरं वपुरहो नव्यो वयःसङ्गमः । कालोऽयं जलदागमस्तदपि यः कामं जिगायाऽऽदरात्, तं वन्दे युवतीप्रबोधकुशलं श्रीस्थूलभद्रं मुनिम् ।। ७६४ ।। हस्तात्प्रस्खलितं १ क्षितौ निपतितं २ लग्नं तथा पादयोः ३, यन्मूर्द्धोर्द्धगतं ४ धृतं कुवसने ५ नाभेरधो यद्धृतम् । स्पृष्टं दुष्टजनै ७ र्घनैरभिहतं ८ यद्दूषितं कीटकै, स्त्याज्यं तत्कुसुमं १ फलं २ दलमपि ३ श्राद्धैर्जिनार्चाक्षणे ।। ७६५ ।। आदौ मज्जनचारु चीरतिलकं नेत्राञ्जनं कुण्डलं, नासामौक्तिकपुष्पहारकुण्डलं झङ्कारकं नूपुरम् । अङ्गे चन्दनलेपकञ्चुकमणी क्षुद्रावली घण्टिका, ताम्बूलं करकङ्कणं चतुरता शृङ्गारकाः षोडश ।। ७६६ ।। स्नानं १ कुन्तलधूपनं च २ कबरीगुम्फः ३ करे वीटकं ४, चीरं ५ चन्दनलेप ६ कञ्चुक ७ रदोद्योता ८ ञ्जना ९ ऽलक्तकम् १० । ताम्बूलं ११ तिलकं १२ च पत्रलतिका १३ कर्पूरपूर १४ स्तथा, पुष्पाणां मुकुटो १५ नखेषु रचना १६ शृङ्गारकाः षोडश ।। ७६७ ।।

प्रकारान्तरम्—

क्षौरं १ मजन २ वस्त्र ३ शीर्षतिलकं ४ गात्रे विलेपार्चनं ५, कर्णे कुण्डल ६ मुद्रिका च ७ मुकुटं ८ पादौ च चर्मोर्जितौ ९ । हस्ते खड्ग १० पटाम्बरं ११ कटिछुरी १२ विद्याविनोदो १३ मुखे, ताम्बूलं १४ करकङ्कणं १५ चतुरता १६ शृङ्गारकाः षोडश ।। ७६८ ।। कन्यागोशङ्खभेरीदधिफलकुसुमं पावको दीप्यमानो, नागेन्द्रोऽश्वो रथो वा नृपतिरभिमुखः पूर्णकुम्भो द्विजो वा । वेश्या स्त्री सान्द्रमांसं जलचरयुगलं सिद्धमन्नं [यतिर्वा] शतायुः, प्रस्थाने प्रस्थितानां यदि भवति ध्रुवं सिद्धिरेवं नराणाम् ।। ७६९ ।। भेरीमृदङ्गमृगमर्दलशङ्खवीणा, वेदध्वनिः सधवमङ्गलगीतघोषा । पुत्रान्विता च युवतिः सुरभिः सवत्सा, धौताम्बरश्च रजकोऽभिमुखः प्रशस्तः ।। ७७० ।। वार्त्ताकृत् १ पल्लवग्राही २, निद्रालु ३ रतिचञ्चलः ४ । अनुत्थितसमुत्थायी ५, व्याख्यानाऽनर्हपञ्चकम् ।। ७७१ ।। न चौरग्राह्यं न च राजग्राह्यं, प्रयाणकाले न च भारवाह्यम् । एतद्धनं सर्वधनप्रधानं, विद्याधनं सत्पुरुषा वहन्ति ।। ७७२ ।। अमन्त्रमक्षरं नास्ति, नास्ति मूलमनौषधम् । अनाथा [निर्धना] पृथिवी नास्ति, आम्नायाः खलु दुर्लभाः ।। ७७३ ।। असारस्य पदार्थस्य, प्रायेणाऽऽडम्बरो महान् । नहि स्वर्णे ध्वनिस्तादृग्, यादृक् कांस्ये निरीक्ष्यते ।। ७७४ ।। कार्याणि बहुमित्राणि, दुर्बलानि बलानि च । वने बद्धो महानागो, मूषकैः परिमोचितः ।। ७७५ ।। बहुभिर्न विरोद्धव्यं, दुर्जयो हि महाजनः । स्फुरन्तमपि नागेन्द्रं, भक्षयन्ति पिपीलिकाः ।। ७७६ ।। शक्यो वारयितुं जलेन हुतभुक् छत्रेण सूर्यातपो,—नागेन्द्रो निशिताङ्कुशेन समदो दण्डेन गोगर्दभौ । व्याधिर्भेषजसङ्ग्रहैश्च विविधैर्मन्त्रप्रयोगैर्विषं, सर्वस्यौषधमस्ति शास्त्रविहितं मूर्खस्य नास्त्यौषधम् ।। ७७७ ।। रे लोलोल्बणकल्लोल !, धिक् ते सागर ! गर्जितम् । यस्य तीरे तृषाक्रान्तः, पान्थः पृच्छति कूपिकाम् ।। ७७८ ।। याचको लभते लक्षं, लेखः कोटिं विशेषयेत् । दृष्टे कोटिशतं मूल्यं, निर्मूल्यः स्नेहसङ्गमः ।। ७७९ ।। सुअसायरो अपारो, आउं थोवं जिया य दुम्मेहा । तं किंपि सिक्खियव्वं, जं कज्जकरं च थोवं च ।। ७८० ।। वासश्चर्मविभूषणं शवशिरो भस्माङ्गरागः सदा, गौरेकः स च लाङ्गलेष्वकुशलः सम्पत्तिरेतादृशी । ईशं स्वं परिहृत्य याति जलधिं, रत्नाकरं जाह्नवी, कष्टं निर्धनकस्य जीवितमहो ! दारैरपि त्यज्यते ।। ७८१ ।। धर्मो यत्र धनं तत्र, समराशितया स्थिरम् । यत्राऽधर्मो न तत्रेदं, न च पञ्चमयोगतः ।। ७८२ ।। पुण्यादेव समीहितार्थघटना नो पौरुषात्प्राणिनां, यद्भानोर्भ्रमतोऽपि नाऽम्बरतले स्यादष्टमः सैन्धवः । स्वस्थानात्पदमात्रमप्यचलतो विन्ध्यस्य चाऽनेकधा, जायन्ते मधुपालिपालितयशःश्रीलम्भिनः कुम्भिनः ।। ७८३ ।। अस्माकं बदरी चक्रे, युष्माकं बदरी गृहे । बादरायणसंयोगाद् , यूयं यूयं वयं वयम् ।। ७८४ ।। पतिः १ श्वशुरता २ ज्येष्ठे, पतिर्देवरताऽनुजे । पाण्डवैः सह पाञ्चाल्या,—स्त्रितयं

"Aho Shrut Gyanam"

त्रितयं त्रिषु ॥ ७८५ ॥ पञ्चानामपि नो भर्त्ता, न सा प्रकृतिः मानवी । मा वृकोदरपादेन, एकादशचमूपतिम् ॥ ७८६ ॥

[इति कृष्णस्य भीमं प्रत्युक्तिः ॥]

कृतं प्राज्यं राज्यं जलधिवलये भूमिनिलये, सुखं भुक्तं कैश्चिद्भुवि नृपतिभिर्जन्म विदितम् । चरं प्राणैर्नीतं मरणमधुना वीरशयने, शिवा श्वा काको वा स्पृशतु यदि वा पाण्डुतनयः ॥ ७८७ ॥

[इति दुर्योधनस्य भीमं प्रत्युक्तिः ॥]

मूर्खस्तपस्वी राजेन्द्रो विद्वांश्च वृषलीपतिः । उभौ तौ तिष्ठतो द्वारे, कस्य दानं प्रदीयते ॥ ७८८ ॥

[इति युधिष्ठिरं प्रति भीमोक्तिः ॥]

सुखासेव्यं तपो भीम, विद्या कष्टदुरासदा । विद्वांसं पूजयिष्यामि, तपसा किं प्रयोजनम् ? ॥७८९॥

[भीमं प्रति युधिष्ठिरोक्तिः ॥]

श्वानचर्मगता गङ्गा, क्षीरं मद्यघटस्थितम् । [कु] अपात्रे पतिता विद्या, किं करोति युधिष्ठिर ! ॥७९०॥

[युधिष्ठिरं प्रति अर्जुनोक्तिः ॥]

न विद्यया केवलया, तपसाऽपि च पात्रता । यत्र स्यातामिमे चोभे, तद्धि पात्रं प्रचक्ष्यते ॥ ७९१ ॥

[युधिष्ठिरादीन् प्रति द्वैपायनोक्तिर्महाभारते ॥]

दारिद्र्यानलसन्तापः, शान्तः सन्तोषवारिणा । याचकाशाविघातान्त–र्दाहः केनोपशाम्यतु ॥ ७९२ ॥ यान्तु यान्तु बत प्राणा,–अर्थिनि व्यर्थतां गते । पश्चादपि हि गन्तव्यं क सार्थः पुनरीदृशः ॥ ७९३ ॥

[माघवाक्यम्]

बाह्यारिभ्योऽपि तद्युक्त,–मन्तरङ्गारयोऽधिकाः । जीयन्ते शस्त्रतो बाह्या,–अन्तरङ्गाश्च शास्त्रतः ॥ ७९४ ॥ भेरीजर्जरकर्णाश्च, वयं प्रासादवासिनः । न चैते पक्षिणो राजन् !, ये यान्ति करताडनात् ॥ ७९५ ॥ दारिद्र्यं नृपतिः स नो निजपतिस्तस्य प्रसादादभूद्, भैक्ष्यं भोजनमंशुकं दशदिशः सद्मानि देवालयाः । मद्विद्वेषिणि लब्धसंगतिरिति त्वय्याश्रिते कुप्यता, मद्वृत्त्या विनियोजितास्त्वरयस्तेनाऽत्र नः का गतिः ॥ ७९६ ॥ समाः षष्टिर्द्विघ्ना मनुजकरिणां पञ्चकनिशा (१२० व. दिन५), हयानां द्वात्रिंशत् ३२, खरकरभयोः पञ्चककृतिः २५ । द्विरूपा सैवायुर्वृषमहिषयो १२, र्द्वादश शुनः, स्मृतं छागादीनां दश च परमं षड्भिरधिकम् ॥ ७९७ ॥ पश्य लक्ष्मण ! पम्पायां, बकः परमधार्मिकः । शनैः शनैः पदं धत्ते, जीवानां वधशङ्कया ॥ ७९८ ॥ वैर १ वैश्वानर २ व्याधि–वाद ४ व्यसन ५ लक्षणाः । महानर्थाय जायन्ते, वकाराः पञ्च वर्धिताः ॥ ७९९ ॥ शून्यसप्ताङ्कहस्ताश्च,–चन्द्रेन्दुवसुवह्नयः (३८११२९७०) । एतत्सङ्ख्याङ्कनिर्दिष्टो,–वनभारः प्रकीर्त्तितः ॥ ८०० ॥ चत्वारः पुष्पिता भारा, अष्टौ च फलपुष्पिताः । वल्ल्यो भारषट्कं च, वासुदेवप्रकीर्त्तितम् ॥ ८०१ ॥

अष्टादश भाराः पुनरनेन प्रकारेणाऽपि—

कल्पवृक्ष १ पारिजात २ मन्दार ३ हरिचन्दन ४ सन्तान ५ वट ६ पिप्पल ७ पिंपर ८ उदुंबर ९ निर्बीज १० बीजभोज्य ११ वृक्ष १२ फलभोज्य १३ मूलभोज्य १४ सर्वभोज्य १५-१६ काष्ठभोज्य १७ पत्रभोज्य १८ इति ॥ ८०२ ॥ ये लेखयन्ति जिनशासनपुस्तकानि,

"Aho Shrut Gyanam"

व्याख्यानयन्ति च पठन्ति च पाठयन्ति । शृण्वन्ति रक्षणविधौ च समाद्रियन्ते, ते मर्त्यदेवशिवशर्म नरा लभन्ते ॥ ८०३ ॥ दीपो ज्ञानमयो यस्य, वर्त्तिर्यस्य तपोमयी । ज्वलते शीलतैलेन, न तमस्तस्य तिष्ठति ॥ ८०४ ॥ बालस्त्रीमन्दमूर्खाणां, नृणां चारित्रकाङ्क्षिणाम् । अनुग्रहार्थं तत्त्वज्ञैः सिद्धान्तः प्राकृतः कृतः ॥ ८०५ ॥ मायासीलह माणुसां, किमुसां किमु पत्तिज्ज ण जाइ । नीलकंठ महुर उलवइ, सविस भुजंगम खाइ ॥ ८०६ ॥ शिरसा धार्यमाणोऽपि, सोमः सोमेन शम्भुना । तथापि कृशतां धत्ते, कष्टं खलु पराश्रयः ॥ ८०७ ॥ अलिअं जंपेइ जणो, पुत्तो जं होइ वायसारिच्छो । अत्थमिए रविबिंबे, खणमिकं किं तवउसणी ॥ ८०८ ॥ जम्मंतीए सोगो वड्डंतीए च वड्डए चिंता । परिणीआए दंडो, जुवइपिया दुक्खिओ निच्चं ॥ ८०९ ॥ न विना मधुमासेन अन्तरं पिककाकयोः । वसन्ते च पुनः प्राप्ते, काकः काकः पिकः पिकः ॥ ८१० ॥ यवागूजरणे जाड्यं, मोदकानां तु का कथा । वचनेऽपि दरिद्रत्वं, धनाशा तत्र कीदृशी ॥ ८११ ॥ वायुना यत्र नीयन्ते, कुञ्जराः षष्टिहायनाः । गावस्तत्र न गण्यन्ते, मशकस्य च का कथा ॥ ८१२ ॥ अतिपरिचयादवज्ञा, भवति विशिष्टेऽपि वस्तुनि प्रायः । लोकः प्रयागवासी, कूपे स्नानं समाचरति ॥ ८१३ ॥ अपसरणमेव युक्तं, मौनं वा तत्र राजहंसस्य । कटु रटति निकटवर्त्ती, वाचालष्टिट्टिभो यत्र ॥ ८१४ ॥ रे बालकोकिल करीरमरुस्थलीषु, किं दुर्विदग्ध ! मधुरध्वनिमातनोषि । अन्यः स कोऽपि सहकारतरुप्रदेशो, यस्मिन् जयन्ति तव विभ्रमभाषितानि ॥ ८१५ ॥ अस्मान् विचित्रवपुषश्चिरपृष्ठलग्नान्, कस्माद्विमुञ्चसि विभो ! यदि वा विमुञ्चेः । हा हेति केकिवर ! हानिरियं तवैव, भूपालमूर्द्धनि पुनर्भविता स्थितिर्नः ॥ ८१६ ॥ शैत्यं नाम गुणस्तवैव तदनु स्वाभाविकी स्वच्छता, किं ब्रूमः शुचितां व्रजन्ति सुधियः स्पर्शेन यस्याऽपरे । किं चाऽतः परमस्ति ते स्तुतिपदं यज्जीवितं देहिनां, त्वं चेन्नीचपदेन गच्छसि पयः कस्त्वां निरोद्धुं क्षमः ॥ ८१७ ॥ सत्यं चेत्तपसा च किं ? शुचि मनो यद्यस्ति तीर्थे न किं ?, सद्विद्या यदि किं धनैः ? सुमहिमा यद्यस्ति किं मण्डनैः ? । लोभश्चेदगुणेन किं ? पिशुनता यद्यस्ति किं पातकैः ?, सौजन्यं यदि किं निजै ? रपयशो यद्यस्ति किं मृत्युना ? ॥ ८१८ ॥ अग्नि १ रापः २ स्त्रियो ३ मूर्खाः ४, सर्पो ५ राजकुलानि ६ षट् । नित्यं यत्नेन सेव्यन्ते, सद्यः प्राणहराणि षट् ॥ ८१९ ॥ आयुषो १ राजवित्तस्य २, पिशुनस्य ३ धनस्य च ४ । खलस्नेहस्य ५ देहस्य ६, नाऽस्ति कालो विकुर्वतः ॥ ८२० ॥ त्रयः स्थानं न मुञ्चन्ति, काकाः १ कापुरुषा २ मृगाः ३। अपमाने त्रयो यान्ति, सिंहाः १ सत्पुरुषा २ गजाः ३ ॥ ८२१ ॥ राजा १ कुलवधू २ विप्रा ३, नियोगि ४ मंत्रिण ५ स्तथा । स्थानभ्रष्टा न शोभन्ते, दन्ताः ६ केशा ७ नखा ८ नराः ९ ॥ ८२२ ॥ उपाध्याय १ श्च वैद्यश्च २, प्रतिभू ३ र्भुक्तनायिका ४ । सूतिका ५ दूतिका ६ चैव, सिद्धे कार्ये तृणोपमाः ॥ ८२३ ॥ चित्रकृत् १ काव्यकर्त्ता च २, कुवैद्यः ३ कुनरेश्वरः ४ । चत्वारो नरकं यान्ति, पञ्चमो ग्रामकूटकः ॥ ८२४ ॥ आयुः १ कर्म्म च २ वित्तं च ३, विद्या ४ निधनमेव च ५ । पञ्चैतानि हि सृज्यन्ते, गर्भस्थस्यैव देहिनः ॥ ८२५ ॥ षष्टिर्वामनके दोषा, अशीतिर्मधुपिङ्गले । शतं च ढुंटमुंटेषु, काणे संख्या न विद्यत ॥ ८२६ ॥ हस्ते नरकपालं ते, मदिरामांसभक्षिणि । भानुः पृच्छति मातङ्गि !, किं तोयं दक्षिणे करे ? ॥ ८२७ ॥

[इति भानुवाक्यम् ॥]

चण्डाली प्राह—

मित्रद्रोही १ कृतघ्नश्च २, स्तेयी ३ विश्वासघातकः ४ । कदाचिच्चलितो मार्गे, तेनेयं क्षिप्यते छटा ॥ ८२८ ॥

"Aho Shrut Gyanam"

पुनः—

कूटसाक्षी १ मृषावादी २, पक्षपाती ३ झघट्टके । कदाचिच्चलितो मार्गे, तेनेयं क्षिप्यते छटा ॥ ८२९ ॥ कण्ठे घोरं गरलमनलज्वालमाला ललाटे, चूडापीडे कुपितफणभृद्भूषणान्यस्थिसंघाः । सख्यं प्रेतैस्तदपि यदसून् धारयेदेष शूली, हेतुस्तस्मिन् जयति भगवान् मूर्ध्नि पीयूषभानुः ॥ ८३० ॥ कालिम्ना न गता स्वनामगलितं जाता कलङ्काभिधा, गत्वेन्दुं धवलीकृतत्रिभुवनं किं लब्धमुच्चैर्मृगैः । अस्माकं वसतां वने युवतयो वाञ्छन्ति नेत्रोपमां, कस्तूरीहरिणाभिधाऽजनि जने भूमीगतानामपि ॥ ८३१ ॥ युवभिरवलोक्यमानं, स्तनयुगलं तन्वि किं तिरस्कुरुषे । कतिपयदिनव्यपाये, कः पश्ये-ल्लम्बमानं तत् ॥ ८३२ ॥ सच्छंदा य सरूवा, सालङ्कारा य सरसउल्लावा । वरकामिणिव्व गाहा, गाहिज्जंती रसं देई ॥ ८३३ ॥ सायर ! तुज्झ न दोसो, दोसो अम्हाण पुव्वकम्माणं । रयणायरंमि भरिए, सालूरो हत्थ मे लग्गो ॥ ८३४ ॥ जाओ कलिंगदेसे, आगमणं विंझदेसमज्झंमि । मरणं समुद्दतीरे, अज्जवि किं भविस्सइ तस्स ॥ ८३५ ॥ भिक्षां मे पथिकाय देहि सुभगे ! हा ! हा ! गिरो निष्फलाः, कस्माद् ब्रूहि सखे ! ऽत्र सूतकमभूत्कालः कियान् वर्त्तते ? । मासः शुद्धिरभून् ? नहि नहि प्रोद्भूतमृत्युं विना, को जातो ? मम दिव्यवित्तहरणे दारिद्र्यनामा सुतः ॥ ८३६ ॥ आग्नेय्यां गणभृद्विमानवनिता साध्व्यः स्थिता नैर्ऋते, ज्योतिर्व्यन्तरभावनेशदयिता वायव्यगास्तत्प्रियाः । ऐशान्यां च विमानवासिनरनार्यः संस्थिता यत्र वा, जैनस्थानमिदं चतुस्त्रिपरिषत्संशोभितं पातु वः ॥ ८३७ ॥ गतं तद्गाम्भीर्यं तटमनुगतं आलिकशतैः, सखे ! हंसोत्तिष्ठ त्वरितममुतो ग्रामसरसः । न यावत्प-ङ्काम्भःकलुषितवपुर्भूरिविलसद्, बकोटो वाचालश्चरणयुगलं मूर्ध्नि तनुते ॥ ८३८ ॥ दो पंथेहि न गम्मइ, दोमुह सूइई न सीवई कंथा । दोवि कयावि न हुज्जा, इंदिअसुक्खं च मुक्खं च ॥ ८३९॥ ये पुरा वीतरागेण, जिता रागादयो हठात् । मुद्गलीभूय लग्नास्ते, तत्सन्तानस्य पृष्ठतः ॥ ८४० ॥ आत्मानदी संयमतोयपूर्णा, सत्यावहा शीलतटादयोर्मिः । तत्राभिषेकं कुरु पाण्डुपुत्र, न वारिणा शुद्ध्यति चाऽन्तरात्मा ॥ ८४१ ॥ सरोषता १ बन्धुजनेषु वैरं २, दरिद्रता ३ बन्धुजनेष्वसङ्गः ४ । अत्यन्तकोपः ५ कटुका च वाणी ६, नरस्य चिह्नं नरकागतस्य ॥ ८४२ ॥ क्षुधालुता १ मान-विहीनता च २, भयातिरेकः ३ प्रभविष्णुता च ४। मानापमाने समचित्तता च ५, तिर्यग्गतेरागत-चिह्नमेतत् ॥ ८४३ ॥ सन्तुष्टता १ मध्यमवर्त्तिता च २, स्वल्पश्च कोपो ३ निकषायता च ४। भोगाभिलाषे समचित्तता च ५, भवन्ति मानुष्यसमागतानाम् ॥ ८४४ ॥ ता खलु पूएअव्वा, रय-णत्तयधारिणो सया मुंणिणो । तेसिं दाणं देयं, सुद्धं, सुद्धेण भावेणं ॥ ८४५ ॥ तित्थस्स मुणी मूलं, मुणीण मूलं हवंति असणाई । जो देइ ताणि तेसिं, तु तेण तित्थुन्नईविहिआ ॥ ८४६ ॥ तित्थंतरेसु वि जओ, केवलिरहिएसु अज्जखित्तेसु । उवयारपरा मुणिणो, जिणधम्मधुरंधरा भणिआ ॥ ८४७ ॥

१–भवनपतिज्योतिर्व्यन्तरदेव्य इत्यर्थः । २–इंदिए थावरकाय १ बंभथावरकाय २ सिप्पी थावरकाय ३ समुई थावरकाय ४ आवसी थावरकाय ५ जंगम काय ६ तथा गाथा–**इंदी बंभ सिप्पी, सुमई आवसी पंचकायाए । जररत्तसेयहरिया, बहुवत्ता [न्ना] हुंति पंचमीया ॥ १ ॥** तत्र इंद्रियथावरकायनुं पृथ्वीगोत्र पीतवर्ण पुढवीना जीव एकेंद्रिय देवता १। बंभथावरकायनुं अप्‌गोत्र रक्तवर्ण ब्रह्मदेवता अप्‌कायना जीव २। सिप्पिथावरकायनुं गोत्र तेउकाय वर्ण श्वेत देवता शिल्प तेउकायनो ३। सुमतिथावरकायनुं गोत्र वाउकाय हरितवर्ण सुमति देवता वायुकायना जीव ४। आवसी-थावरकायनुं गोत्र वनस्पतिकाय वर्ण नानाप्रकारनो पातालदेवता वनस्पतिना जीव ५। तथा जंगम त्रसकाय कहिये। ए छ कायना गोत्र जाणवा। चक्षु इंद्रियनो आकार मसूरनी दाल जेवडो १। श्रोत्रइंद्रियनो आकार अगत्थियाना फूल जेवडो २। नासिकानो आकार तिलना फूल सरिखो ३। रसना इंद्रियनो आकार कमलपत्र सरिखो ४। स्पर्श इन्द्रियनो आकार अनेक प्रकारनो छे, इम साधुने आकार मात्र रूप नथी ते माटे पांचे इन्द्रियना विषयविकार दमे ते मुनि वीतराग कहिजे ॥ १ ॥ ३–तिगरण इति पाठांतरम् ।

"Aho Shrut Gyanam"

होही जो तित्थयरो, अपच्छिमो इह य भारहे खित्ते । मुणिदाणाओ तेण वि, पाविआ दुल्लहा बोही ॥ ८४८ ॥ के वि हु वीरासणिआ, पउमासणिया निसिज्जआसणिआ । गोदोहिअउक्कडिआ, दंडासणिआ मुणी के वि ॥ ८४९ ॥ के वि हु एगपयट्ठिआ, उद्धभुआ केवि के वि रविदंसी । के वि हु उत्ताणसया, केवि ठिआ उद्धचरणेहिं ॥ ८५० ॥ इच्चाइआसणेहिं, चउरासीइहिं विहिअउस्सग्गा । आयावणभूमीए, आयावंता समणसीहा ॥ ८५१ ॥ एगे चउत्थछट्ठट्ठमदसमदुवालसद्धमासेहिं । खमणेहि खवंति तणुं, सुदुट्ठकम्मट्ठगंठिं च ॥ ८५२ ॥ अवरे आयंबिलिआ, संखादत्ती अ विगयवज्जी अ । अप्पगसित्थाभोई, उज्झियधम्माइआ अन्ने ॥ ८५३ ॥ केवि सुअं वायंता, संसयठाणाइ के वि पुच्छंता । के वि हु परियट्टंता, अणुपेहंता पुणो के वि ॥ ८५४ ॥ जिअकोहा जिअमाणा, जिअलोहा जिअपरीसहा धीरा । जिअनिद्दा जिअमाया, जिइंदिया विजिअमोहबला ॥ ८५५ ॥

[इति सुदर्शनकथायां चित्रावालगच्छीयश्रीदेवेन्द्रसूरिकृतगाथैकादशकम्
गा० ९५० ९६०, १०९ पत्रे तथा गौ० ५७–६३, ७६ पत्रे ॥]

नाम्ना **गाथासहस्री**ति, ग्रन्थोऽयं ग्रथितो मया ।
पण्डितानां च ताम्बूलमिवाऽयं मुखमण्डनम् ॥ १ ॥
गाथाः कियत्यः प्रकृताः कियन्तः, श्लोकाश्च काव्यानि कियन्ति सन्ति ।
नानाविधग्रन्थविलोकनश्रमा,–देकीकृता अत्र मया प्रयत्नात् ॥ २ ॥
व्याख्याचातुर्यवाञ्छा यदि भवति तदा शास्त्रमेतत्समग्रं,
कण्ठे कृत्वा विशेषाऽवगमपरमार्थं गृहीत्वा गुरूक्तेः ।
व्याख्याकाले विचाले प्रवरमवसरं प्राप्य वाच्यं प्रसक्तं,
सभ्येभ्यानां पुरस्ताच्चतुरनरचमत्कारकारं च भावि ॥ ३ ॥
राज्ये **श्रीजिनराजस्य**, प्रतापाक्रान्तविष्टपे ।
आचार्यपदवीं प्राप्ते, **सूरिश्रीजिनसागरे** ॥ ४ ॥
श्रीजिनचन्द्रगणाधिप–शिष्यादिम**सकलचन्द्रगणि**शिष्यैः ।
श्री**समयसुन्दरो**पाध्यायैः संदर्भितो ग्रन्थः ॥ ५ ॥
ऋतु-वसु-रस-शशि (१६८६) वर्षे, विनिर्मितो विजयतां चिरं ग्रन्थः ।
व्याख्यानपुस्तकेषु, व्याख्याने वाच्यमानोऽसौ ॥ ६ ॥
इति श्रीसमयसुन्दरोपाध्यायकृतश्रीगाथासहस्री समाप्तिमगात् ॥
दीवे नंदीसरंमी, चउदिसि चउरो अंजणाभा नगिंदा,
तेहिं तो वाविमज्झे दहिमुहगिरिणो सेयवन्ना तहेव ।
दुण्हं दुण्हंपि तेसिं, रइररइकरा अंतराले य दो दो,
बावन्ना तत्थ तित्थे सुरवरभवणा तेसु वंदे जिणिंदे ॥ १ ॥
॥ इति श्रीनन्दीश्वरद्वीपस्थचैत्यनमस्कारः ॥
यावल्लोकेऽत्र वर्तेते, दिवाकरनिशाकरौ ।
यावन्महीधरो मेरु–स्तावन्नन्दतु पुस्तकम् ॥ १ ॥

समाप्तोऽयं ग्रंथः ।

"Aho Shrut Gyanam"

શ્રી જિનશાસન જય હો !!!
॥ શ્રી ગૌતમસ્વામીને નમઃ ॥ ॥ શ્રી સુધર્માસ્વામીને નમઃ ॥

જિનશાસનના અણગાર, કલિકાલના શણગાર પૂજ્ય ભગવંતો અને જ્ઞાની પંડિતોએ શ્રુતભક્તિથી પ્રેરાઈને વિવિધ હસ્તલિખિત ગ્રંથો પરથી સંશોધન-સંપાદન કરીને અપૂર્વ જહેમતથી ઘણા ગ્રંથોનું વર્ષો પૂર્વે સર્જન કરેલ છે અને પોતાની શક્તિ, સમય અને દ્રવ્યનો સદ્વ્યય કરીને પુણ્યાનુબંધી પુણ્ય ઉપાર્જન કરેલ છે. કાળના પ્રભાવે જીર્ણ અને લુપ્ત થઈ રહેલા અને અલભ્ય બની જતા મુદ્રિત ગ્રંથો પૈકી પૂજ્ય ગુરુદેવોની પ્રેરણા અને આશીર્વાદથી સં.૨૦૬૫માં ૫૪ ગ્રંથોનો સેટ નં-૧ તથા સં.૨૦૬૬માં ૩૬ ગ્રંથોનો સેટ નં-૨ સ્કેન કરાવીને મર્યાદિત નકલ પ્રીન્ટ કરાવી હતી. જેથી આપણો શ્રુતવારસો બીજા અનેક વર્ષો સુધી ટકી રહે અને અભ્યાસુ મહાત્માઓને ઉપયોગી ગ્રંથો સરળતાથી ઉપલબ્ધ થાય.

પૂજ્ય સાધુ-સાધ્વીજી ભગવંતોની પ્રેરણાથી જ્ઞાનખાતાની ઉપજમાંથી તૈયાર કરવામાં આવેલ પુસ્તકોનો સેટ ભિન્ન-ભિન્ન શહેરોમાં આવેલ વિશિષ્ટ ઉત્તમ જ્ઞાનભંડારોને ભેટ મોકલવામાં આવ્યા હતા. આ બધાજ પુસ્તકો પૂજ્ય ગુરુભગવંતોને વિશિષ્ટ અભ્યાસ-સંશોધન માટે ખુબજ જરુરી છે અને પ્રાયઃ અપ્રાપ્ય છે. અભ્યાસ-સંશોધનાર્થે જરૂરી પુસ્તકો સહેલાઈથી ઉપલબ્ધ બને તેમજ પ્રાચીન મુદ્રિત પુસ્તકોનો શ્રુત વારસો જળવાઈ રહે તે શુભ આશયથી આ ગ્રંથોનો જીર્ણોદ્ધાર કરેલ છે. જુદા જુદા વિષયોના વિશિષ્ટ કક્ષાના પુસ્તકોનો જીર્ણોદ્ધાર પૂજ્ય ગુરૂભગવંતોની પ્રેરણા અને આશીર્વાદથી અમો કરી રહ્યા છીએ. તો અભ્યાસ તથા સંશોધન માટે વધુમાં વધુ ઉપયોગ કરીને શ્રુતભક્તિના કાર્યને પ્રોત્સાહન આપશો.

લી.શાહ બાબુલાલ સરેમલ બેડાવાળાની વંદના

મંદિરો જીર્ણ થતાં આજકાલના સોમપુરા દ્વારા પણ ઊભા કરી શકાશે.....!
પણ એકાદ ગ્રંથ નષ્ટ થતા બીજા કલિકાલસર્વજ્ઞ કે
મહોપાધ્યાય શ્રી યશોવિજયજી ક્યાંથી લાવીશું...???